महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : १४
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्: श्रावण कृष्ण २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

जुलाई द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. रूढ़िवादी पौराणिकों द्वारा..	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५२	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. क्या विदेश-यात्रा पाप है?	पवित्रा देवी	१५
०५. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	२०
०६. संस्था की ओर से...		२२
०७. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		२५
०८. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		२६
०९. देशभक्त दयानन्द	कन्हैयालाल आर्य	२७
१०. आर्यसमाज के नियम	नवीन मिश्र	३१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

रूढ़िवादी पौराणिकों द्वारा भारतीय समाज से विश्वासघात-२

अतीत में विश्वगुरु और सोने की चिड़िया कहाने वाले 'आर्यावर्त' जिसको कि आज 'भारत' कहते हैं और जिसको अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग 'इंडिया' कहकर अपने को आधुनिक समझते हैं, इसके बहुमुखी पतन के कारणों में विदेशी आक्रमणों और उनमें पराजय को प्रमुख कारण मानते हैं। यह ठीक भी है। किन्तु निहित स्वार्थी अपनों ने भी आक्रमणों से पहले इस देश को खोखला बनाया है। जिन धर्माचार्यों का दायित्व देश, समाज को शिक्षा देकर मार्गदर्शन करना, उसकी उन्नति करना, एकता स्थापित करना था, उन्होंने अपने दायित्व को न निभाकर उसके उलटकर समाज के साथ विश्वासघात किया। जो देश-धर्म के पतन का कारण बना। यहाँ संचालित रूढ़िवादी पौराणिक विचारधारा ने धर्म-स्थापना के नाम पर वर्ण-व्यवस्था की उपेक्षा करके घोर जातिवाद की स्थापना की और ऊँच-नीच, छुआछूत के भेदभावपूर्ण व्यवहार से हमारे सुदढ़ सामाजिक संगठन को छिन्न-भिन्न कर दिया। देश-धर्म की रक्षा के लिए जान की बाजी लगा रहे छत्रपति शिवाजी तक को शूद्र कहकर उनका राजतिलक करने से इन्कार कर दिया था। उनसे क्षत्रिय होने का प्रमाणपत्र माँगा गया। इन मूढ़ों से कोई पूछे तुमने मुसलमानों अंग्रेजों से कभी जन्म प्रमाणपत्र माँगा, जो उनके आठ सौ वर्ष गुलाम रहे!! अधिकांश आर्यों/हिन्दुओं के धार्मिक एवं शैक्षिक अधिकार छीन लिये। उन पर तरह-तरह के अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध लगाए। अन्धविश्वासों, पाखण्डों को बढ़ावा देकर अपना उल्लू सीधा किया निहित स्वार्थवश ग्रन्थों में प्रक्षेप करके और असम्भव कथाएँ गढ़कर इतिहास, साहित्य एवं मान्य महापुरुषों के चरित्र को विद्रूप कर दिया। रूढ़िवाद के स्वार्थ और अन्धविश्वास ने एक वीरदेश को अकर्मण्य बना दिया। इसी कारण सोमनाथ में लुटे भी, खूब पिटे भी, मरे भी, और गुलाम भी बने। किन्तु देश-धर्म का इतना पतन करके भी कथित धर्माचार्य आज भी नहीं सुधरे हैं। आज भी उनकी पतनकारी रूढ़िवादी धारणाएँ हैं। इस तरह किसी देश की आन्तरिक परिस्थितियाँ जब खोखली और अनुकूल हो जाती हैं तब बाहरी आक्रान्ता उस देश पर आक्रमण किया करता है। इस देश पर आक्रमण तो सीमित विदेशियों ने किया था, किन्तु फिर भी वे अपने लक्ष्यों में सफल रहे। उनकी वह सफलता हमारे रूढ़ि एवं विघटित परिवेश की देन थी। भारत के साथ राजनीतिक गद्दारी करने की चर्चा जब होती है, तो कन्नौज के राजा जयचन्द, महाराणा प्रताप के भाई मानसिंह और बंगाल के बादशाह सिराजुद्दौला के सेनापति मीर जाफर एवं मीर कासिम का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। जयचन्द और मानसिंह ने गद्दारी करके मुसलमानों के लिए भारत में प्रवेश का मार्ग खोला, तो मीर जाफर और मीर कासिम ने अंग्रेजों के लिए। दोनों आक्रान्ताओं के अपने-अपने धार्मिक मत, मत-ग्रन्थ और मूल देश थे, अतः स्वाभाविक था कि उन्होंने इस देश को लूटा भी, मारा भी और हम पर बलात् अपना मत भी थोपा। भारत में विदेशी शासनों के आक्रमण के समय से ही इस देश में आस्तीन के साँप पलने शुरू हो गये थे। तब से लेकर आज तक, विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले ऐसे लोगों की भारत में संख्यात्मक स्थिति यह है कि एक ढूंढो हजार मिलते हैं।

विश्वासघात के अनेक रूप होते हैं। उसका सीधा-सा अर्थ है कि जो व्यक्ति अपने देश, धर्म, समाज, संस्कृति, साहित्य, इतिहास आदि को लक्ष्यपूर्वक या निहित स्वार्थ-वश विरोधी गतिविधियों से हानि पहुँचाता है, उसको उस-उस प्रकरण में गद्दार, कृतघ्न, द्रोही, नमकहराम, विश्वासघाती आदि कहा जाता है।

अतिकठोर अनुशासन वाले देश अपने देश-समाज को किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाने वाले लोगों को कठोरतम दण्ड से दण्डित करते हैं। उसका अच्छा परिणाम यह होता है कि लोग गद्दारी करने से सदा भयभीत रहते हैं और देश समस्यामुक्त एवं सुरक्षित रहता है। किन्तु भारत गद्दारों के लिए अभयारण्य रहा है। यहाँ हर क्षेत्र का गद्दार न केवल सुविधापूर्ण जीवन जीता रहा है अपितु अतीत में जिस अपने देश के शासन के विरुद्ध उसने गद्दारी की थी,

उसी शासन में भी वह अवसर मिलते ही शासक बन बैठा। यही कारण है कि हर क्षेत्र में लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, अभिव्यक्ति की आजादी आदि की आड़ में स्वच्छन्दतापूर्वक हानि पहुँचाने वाले लोग इस देश में अब इतने हो गये हैं कि एक ढूंढो हजार मिलते हैं।

विदेशी मतों से जुड़े कट्टर लोग भारत और भारतीयता के प्रति प्रतिबद्ध नहीं रहते। जैसे ईसाई और अंग्रेजियत के अनुयायी पैदा भारत में होते हैं, अन्न-जल यहाँ का खाते हैं, पलते-बढ़ते यहाँ की भूमि पर हैं, किन्तु आस्था ईसाइयत एवं ईसाई देशों के प्रति रखते हैं। वामपन्थी कम्युनिज्म तथा चीन, रूस आदि देशों के प्रति और मुस्लिम इस्लाम तथा इस्लामी देशों के प्रति। यह सन् १९४७ में देश विभाजन के समय की गई गलती का दुष्परिणाम है। धर्म के आधार पर विभाजन करके एक को उनका देश दे दिया जबकि भारत को खुला मैदान छोड़ दिया। उसका लाभ उठा विदेशी विचारधाराओं ने यहाँ अपना आधार बढ़ा लिया। अकर्मण्य और अदूरदर्शी हिन्दू भ्रम के नशे में डूबे रहे। अब जब शत्रु देश पाकिस्तान भारत पर आक्रमण करता है तो कट्टर मुसलमान उसके साथ तथा चीन जब आक्रमण करता है तो चीन और नेपाल तक के वामपन्थी भी उसके साथ सहानुभूति में हो जाते हैं। आज भारत का भविष्य अधिक भयावह दिखाई पड़ रहा है!

इनके अतिरिक्त इस देश में कुछ लोग स्वयं को बड़े गर्व से धर्मनिरपेक्ष और उदारवादी कहते हैं। इसी प्रकार की अन्य धारणाओं जैसे अति अहिंसा, सहिष्णुता, भगवान् भरोसा, क्षमा ने हिन्दुओं को पलायनवादी बना दिया। उन्होंने इनके प्रयोग में व्यवहार और क्षात्रधर्म में भेद नहीं किया। अतः हजारों सालों से हिन्दू पलायन कर रहे हैं। वह आज तक भी नहीं रुका है। इराक-ईरान से भागे, अफगानिस्तान से भागे, पाकिस्तान से भागे, बंगलादेश से भागे और अब भारत से भारत में ही भाग रहे हैं। हिन्दुओं की इस पलायनवादी वृत्ति का बोध लोगों को जब हुआ था, तब से ही वे इनको भगाने में लगे हैं। भगौड़ों से किसी को डर नहीं होता और कायर और कमज़ोरों का दुनिया में कोई साथ नहीं देता। कोई इनका पक्षधर नहीं, कोई इनका रक्षक नहीं, कोई संकट में साथ खड़ा होने वाला नहीं, वे भी नहीं जिनको ये वोट देकर अपना शासक या नेता चुनते हैं। अन्य विचारधारा के लोगों को देखिये कि सही में भी और गलत में भी अपने लोगों के साथ तन, मन, धन से खुलकर खड़े रहते हैं। इसको कहते हैं एकता और संगठन का आदर्श रूप!!

कथावाचकों का विश्वासघात- आज हिन्दूबहुल देश में हिन्दुओं के इतिहास के लेखक, धर्म-प्रचारक, संस्कृति-रक्षक इतर मतस्थों की मुँहदेखी लिखते हैं...करते हैं और अपनों की निन्दा करते हैं। क्योंकि उसे अपनों से रोका-टोकी का न भय है, न प्रश्न पूछे जाने की चिन्ता। अतः जिसके मन में जो आता है, वह बेखौफ होकर लिखता है और बोलता है। गत दिनों एक जागृति अवश्य देखने में आई। मिलावटी कथित हिन्दू कथावाचक के प्रति रोष-आक्रोश की चर्चा सोशल मीडिया में खूब प्रसारित है। यद्यपि राष्ट्रप्रेमी चैनलों और व्हाट्सएप-वीरों ने कथावाचकों को यह अनुभव करा दिया है कि निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु हमारे धर्म, संस्कृति, इतिहास में सेंध लगाने की कूटनीति करने की छूट किसी को नहीं लेने देंगे। पिछले कुछ वर्षों से धर्म-संस्कृति में घालमेल और मिलावट करनेवालों की बाढ़-सी आ गई है। इनमें सर्वोच्च नाम श्री मोरारी का है, जिनके नाम से पहले 'सन्त' और बाद में सम्मानजनक 'बापू' विशेषण लगाया जाता है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की कथा के बीच पूरे अभिनय के साथ 'अली मौला' गाना गाते हैं। कभी हुसैन, अल्लाह और मुहम्मद का गुणगान करने लगते हैं। एक आनन्दमयी नामक महिला सन्त हैं जिनके नाम से पहले हिन्दू भक्त सर्वाधिक सम्माननीय विशेषण 'माँ' लगाते हैं। वह आँखें बंद करके 'अली मौला' 'अल्लाह-अल्लाह' ऐसे गाती है जैसै वह अल्लाह की ही शरणागत है। एक कुमार स्वामी हैं जो अपने नाम से पूर्व ऋषि परम्परा का सर्वोच्च विशेषण 'ब्रह्मर्षि' लगाते हैं। वे मंच से ईसा का चमत्कार वर्णन और 'अज़ान' करवा रहे होते हैं। उन्होंने तो ब्रह्मर्षि पदवी का ही अवमूल्यन कर दिया है। उनमें ब्रह्मर्षि पद की एक भी योग्यता नहीं है। एक पुत्रीवया भागवत की कथावाचक चित्रलेखा स्वयं को ऋषि-मुनियों से ऊपर समझ भागवत के ही विरुद्ध सर्वधर्म समानता का नया सिद्धान्त स्थापित

करने में लगी है और भागवत की व्यासपीठ से अल्लाह को याद करने की प्रेरणा देती है। किन्तु अल्लाहवालों को ईश्वर को याद करने की प्रेरणा वह कभी नहीं देती! कोई हिन्दुओं की व्यासपीठ पर बैठ कथा के बीच में फिल्मी नाच, कव्वालियों, शृंगारी गानों की महफिल सजा रहा है। कोई श्री गाँधी के तर्कहीन पन्थ 'ईश्वर अल्लाह तेरो नाम' को प्रतिष्ठित करने में जी-जान से जुटा है। जबकि वेदों में वर्णित ईश्वर और बाइबल एवं कुरान में वर्णित अल्लाह के गुण-कर्म-स्वभाव में परस्पर विरोधी अनेक अन्तर हैं। एक भगवा लिहाफ में लिपटा स्वयम्भू शंकराचार्य और एक श्वेत वेशधारी राजनीतिक (अ) साधु अपने भाषणों में कहते फिरते हैं कि इस्लाम से ही विश्व में शान्ति स्थापित होगी। ये सब कथाकर्ता स्वयं को हिन्दू कहते हैं। इन कथावाचकों ने हम आर्यों/हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को खूब आहत किया है!

आर्यसमाज उक्त कथावाचकों के प्रति निम्नांकित प्रश्नों के माध्यम से अपनी आपत्तियाँ प्रस्तुत करता है-

(१) सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण प्रश्न इनसे है कि आप लोग हिन्दू धर्म के प्रचार के लिए संकल्पित और मान्य किये हिन्दू कथावाचक हैं। हिन्दू व्यासपीठ का इस्लाम, ईसाई आदि मतों के प्रचार के लिए उपयोग करना अनैतिक और श्रद्धालु हिन्दू श्रोताओं के साथ विश्वासघात नहीं है क्या?

क्योंकि तीनों मतों के धार्मिक लक्ष्य भिन्न एवं परस्पर विरोधी हैं।

(२) वैदिक विद्याओं के प्रस्तोता महर्षि व्यास के नाम पर बनी व्यासपीठ पर बैठकर आप ऋषि-मुनियों का मुखर विरोध करने वाले मतों का प्रचार और ऋषियों के स्थान पर पैगम्बरों का महिमामंडन करके हिन्दुओं के पूर्वज ऋषि-मुनियों एवं धर्म का अपमान कर रहे हैं।

(३) आप लोग श्री राम कथा, श्री कृष्ण कथा, भागवत कथा आदि के नाम से उनकी कथा का निमन्त्रण देकर वहाँ आने वाले श्रोताओं के समक्ष अन्य मतों के प्रति प्रेरित करने वाले विचार परोसते हैं। क्या यह हिन्दू श्रोताओं को भ्रमित करना और उनके साथ छल करना नहीं है? न्यायालय की भाषा में इसी को विश्वासभंग करना कहते हैं। आप लोगों को यदि अन्य मतों और मतपुरुषों का प्रचार करना है, तो ईमानदारी यह है कि उनके ही नाम से कथा का आयोजन करना चाहिये, छल-छद्म नहीं।

(४) मुनि व्यास के मिथ्या नाम से रचे भागवत पुराण ने भक्ति की आड़ में श्रीकृष्ण की उदात्त छवि को चोर, जार, उद्दण्ड मर्यादाहीन और घोर विलासी के विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। उसे निजी रूप में पढ़ते भी लज्जा आती है। इसी कारण ऋषि दयानन्द ने आक्रोश प्रकट करते हुए लिखा कि ''भागवत बनाने वाला गर्भ में ही नष्ट क्यों नहीं हो गया?'' न जाने भागवत को कथा करने योग्य ग्रन्थ किसने प्रसिद्ध कर दिया! इस बारे में दो बातें जानने की हैं। एक, कथावाचक भागवत का पूर्ण सत्य नहीं बताते। यदि किसी ने सत्य मुँह से कह भी दिया तो श्रोता 'शर्म-शर्म' करके बीच में ही उठकर चले जायेंगे। दूसरी, श्रीकृष्ण का पवित्र, पराक्रमी, नीतिज्ञ, सदाचारी, योगी रूप महाभारत के आरम्भिक मौलिक पर्व में वर्णित है। उसकी कथा कोई नहीं करता। आपत्ति यह है कि आप लोग मूल ग्रन्थों, जैसे वाल्मीकि रामायण, महाभारत की कथा नहीं करते। उन्हीं रूढ़िवादी पुराणों पर आधारित कल्पित भागवत कथा, श्री राम कथा, श्री कृष्णकथा आदि करने का व्यवसाय करते हैं। आप कथावाचक जन हिन्दुओं के मान्य महापुरुषों का केवल असत्य विलासी रूप बताकर श्रद्धालु जनता को विलासिता में मग्न रखकर अकर्मण्य बना रहे हैं। यह तो असत्य कथा है, सत्यचरित्र कथा नहीं!

(५) श्री मोरारी बापू ने श्री कृष्ण का केवल निन्दात्मक पक्ष रखते हुए आरोप लगाया कि उनको धर्म संस्थापक कैसे माना जा सकता है, उनसे अपने परिवार और अपनी द्वारिका नगरी में धर्म स्थापना नहीं हुई? श्रीकृष्ण ने तो महाभारत के युद्ध में अधर्म पक्ष की पराजय करके धर्म पक्ष की स्थापना कर दी। किन्तु बापू! आप स्वयं को हिन्दू सन्त कहते हैं, उम्रभर आपने हिन्दू धर्म का प्रचार किया है, आप अपने परिवार, रिश्ते-नाते में धर्म-स्थापना कर पाये क्या? जरा, मंच से जनता को भी बता दें, ताकि आपके परिवार से हिन्दू श्रोता प्रेरणा ले सकें।

(६) श्री मोरारी बापू कहते हैं, मैं अली मौला बोलता नहीं, स्वयं निकलता है। वाह, क्या कमाल का उत्तर है!

मनोविज्ञानी तो कहते हैं कि जो भाव अन्तर्मन में प्रबल रहता है, वह स्वयं निकलता है। जीवनभर से जिस धर्म की कथा आप करते आ रहे हैं, वही क्यों नहीं निकलता? इसका मतलब है कि आपके अपने धर्म के संस्कार अभी तक दृढ़मूल नहीं हो पाये, किन्तु यह बताइये कि 'अली मौला' के संस्कार कैसे सुदृढ़ हो गये? वह तो नैतिक दृष्टि से आपकी कथा का विषय ही नहीं है!

(७) आप सब लोग वैदिक/हिन्दू धर्म के मंच से इस्लाम और ईसाइयत का बखान करते हैं। आप मस्जिद और गिरजाघर में हिन्दू धर्म की भी कोई कथा करवा दीजिये। नमाज में गायत्री मन्त्र का पाठ करवा दीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करवा पाते हैं, तो इसका मतलब है कि आपका उपदेश पक्षपातपूर्ण है या यह आपका दिवास्वप्न है। क्या कोई ईसाई या मुस्लिम प्रचारक अपने मंच से आपकी तरह हिन्दू ईश्वर या देवी-देवताओं का गुणगान या वेद, गीता आदि का प्रवचन करता है? कृपया बताइये, हमारी प्रबल जिज्ञासा है।

(८) आप लोग समाजसेवी हिन्दू सन्त हैं। अपने धर्म और उसके महापुरुषों की भी खुलकर निन्दा कर लेते हैं। क्या आपने कभी अन्य मतों में स्त्रियों की दुर्दशा, तीन तलाक, हलाला, जिहाद, अन्याय, अत्याचार, धर्मान्तरण, बलात्कार, अपहरण, कश्मीर से हिन्दू निर्वासन, सीरिया में महिलाओं का अपहरण एवं बलात्कार आदि की निन्दा और प्रयास अपने मंच से कभी किया है? यदि नहीं, तो उनके सुधार की चर्चा न करने के आपके क्या कारण हैं?

(९) शास्त्रों में एक नीति वाक्य आता है-''**प्रयोजनं विना मन्दः-अपि न प्रवर्तते**''- मन्दबुद्धि आदमी भी बिना मतलब के कोई कार्य नहीं करता। कथावाचक जन तो चतुर-सुजान हैं। तो उक्त गतिविधियों के पीछे कोई-न-कोई रहस्यमय कारण तो अवश्य होंगे। किसी धर्म की अनुष्ठान विधि में भिन्नता पैदा करना भी एक कूटनीति है, क्योंकि उससे उस संगठन का ऐक्यभाव भंग हो जाता है। हनुमान चालीसा से यज्ञ करना, श्मशान में विवाह कराना, श्री राम, कृष्ण कथाओं में फिल्मी डांस करना वैसी ही नीति है। आप लोगों ने हिन्दुओं की स्थापित विधियों को भंग करके उसकी एकता को नष्ट करने का प्रयास किया है।

(१०) यदि आप लोग सोचते हैं कि मिलावट से सर्वपूज्य हो जायेंगे, तो आपको याद दिला दें कि बेहद तुष्टीकरण करने और हिन्दू मन्दिर में पुलिस की सहायता से जबरदस्ती कुरान पढ़ने के बाद भी श्री गाँधी की यह मंशा पूरी नहीं हो पाई। उनके लिए उनके निकटस्थ रहे मौलाना मुहम्मद अली ने तो स्पष्ट कह दिया था कि उन्हें जन्नत नहीं मिल सकती, क्योंकि वे काफ़िर हैं। बुरे-से-बुरा और भ्रष्ट मुसलमान भी गाँधी से श्रेष्ठ है। तो आप लोग भी इस बिन्दु पर विचार कर लें कि सर्वपूज्य बन पायेंगे क्या? कहीं 'इधर के रहे न उधर के रहे' वाला हाल न हो जाये!

आर्य/हिन्दूधर्मियों का यह न्यायिक अधिकार है कि वे अपने धर्म, इतिहास, संस्कृति-सभ्यता, महापुरुषों की छवि और उदात्त परम्पराओं की रक्षा करने हेतु कथाकारों से उक्त और ऐसे ही अन्य प्रश्न पूछें और भविष्य में विश्वासघात करने से रोकें। नहीं तो यह धर्मविरोध और घालमेल जो आज एक फोड़ा है, वह भविष्य में कैंसर बनकर देश, धर्म, समाज, संस्कृति सभ्यता का संहारक सिद्ध होगा।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

प्रवचनमाला-६६

मृत्यु सूक्त-५२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम।।

हम ऋग्वेद के दशम मण्डल के १८ वें सूक्त पर विचार कर रहे हैं और यह सूक्त मृत्यु-सूक्त है, यह उसका नवम मन्त्र है। इसका ऋषि यामायनः तथा इसका देवता पितृमेधः है। पहले विचार किया गया था कि मृत्यु का व्यक्तिगत जीवन में क्या प्रभाव है, मृत्यु का पारिवारिक जीवन में क्या सम्बन्ध है। मृत्यु का राष्ट्रीय या सामाजिक जीवन में क्या सन्दर्भ है, वह इस मन्त्र के शब्दों में देखने में आता है। मन्त्र राजा से जुड़ा हुआ है और क्योंकि वह क्षत्रिय है, राज्य का पालन करने वाला है तो उसका प्रतीक धनुष है। अर्थात् वह शस्त्रास्त्रधारी है।

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय- यह संसार जो जीवित के साथ चलता है। इसमें कोई भी मर जाता है तो उसकी मृत्यु से संसार की गति में कोई अन्तर नहीं आता। जैसे किसी भीड़ में एक व्यक्ति गिर जाए, मर भी जाए, लेकिन भीड़ का प्रवाह चलता रहता है। वैसे ही संसार की गति चलती रहती है, बनी रहती है। वह गति, जैसे सामान्य व्यक्ति के मरने से, परिवार के मुखिया के मरने से नहीं रुकती वैसे ही शासक के मरने से भी नहीं रुकती। सत्ता और अधिकार तुरन्त स्थानान्तरित हो जाते हैं। शासन का नियम होता है कि राजा का स्थान कभी भी रिक्त नहीं होता। कोई भी क्षण, अपनी जो सत्ता के केन्द्र हैं, उनसे शून्य नहीं होते। यदि किसी कारण से रिक्तता आती है तो तुरन्त उसे भर दिया जाता है, उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति उपस्थित हो जाता है। वही प्रक्रिया इस मन्त्र में समझाई गई है।

मन्त्र कहता है कि जो राष्ट्र का बल है, तेज है वह नष्ट नहीं होगा। कोई व्यक्ति, कोई अधिकारी, कोई सैनिक मर गया, तो कोई बात नहीं है, यह प्रकृति का नियम है, मर गया। लेकिन उसका स्थान तुरन्त दूसरा व्यक्ति लेता है। वह कैसे लेता है- **धनुर्हस्तादाददानो**, जो उसका चिह्न था, जो उसका सामर्थ्य था, जो उसका अधिकार था वो **आददानः** लेता हुआ **मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय**- कहता है कि वह जो अधिकारी हो, वह कैसा हो? बल और तेज से युक्त होना चाहिए, वह राज्य का शासन सँभालने के योग्य होना चाहिए, राज्य का शासन सामर्थ्य के बिना, पुरुषार्थ और बुद्धि के बिना नहीं चलाया जा सकता, नहीं सँभाला जा सकता। अतः कहा- **वर्चसे बलाय।** उसमें सामर्थ्य हो, उसका प्रभाव हो, क्योंकि शासन केवल शारीरिक शक्ति से नहीं चलता, शासन सामर्थ्य से चलता है, भय से चलता है और दण्ड के भय से चलता है। **धनुर्हस्तादाददानो**- राजा का जो दण्ड है, उसका भय है। मनु महाराज तो इतना तक कहते हैं-

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा, दण्ड एव अभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मम् विदुर्बुधाः।।

दण्ड ही धर्म है, धर्म का संचालन करने का मूल आधार है, क्योंकि संसार में मनुष्यों की जो प्रवृत्ति है, वह सामान्य रूप से निम्न है, प्रकृति की ओर जाने वाली है, क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ, उसका मन, उसकी बुद्धि प्रकृति से बनी हुई है, तो प्रकृति से उसको बढ़ावा मिलता है, प्रकृति से उसको सुख मिलता है, प्रकृति में उसको लाभ दिखाई देता है तो उसकी प्रवृत्ति, प्रकृति की ओर, निम्नता की ओर जाती है। इसलिए सामान्य मनुष्य ज्ञान से नहीं

रुकते। नियमों का पालन जो सामान्य व्यक्ति करता है, वह ज्ञान के कारण नहीं अपितु भय के कारण करता है, अपने सम्मान के बिगड़ने के भय से करता है, लज्जा के कारण करता है। तो कुछ व्यक्ति जो समझदार, सभ्य व्यक्ति होते हैं वो लज्जा से नियम का पालन करते हैं और जो उनसे भी आगे के दुष्ट व्यक्ति होते हैं, जिनको भय नहीं लगता, उनको दण्ड से प्रताड़ित कर दिया जाता है। इसलिए मनु महाराज ने कहा है **दण्डः शास्ति प्रजा सर्वाः**। यदि अच्छा करने वाले को आपने पुरस्कृत नहीं किया और बुरा करने वाले को यदि आपने प्रताड़ित नहीं किया तो व्यवस्था न आपके घर की चलेगी, न समाज की चलेगी, न देश की चलेगी। इसलिए नियम है कि जो भी अच्छा करता है, नियम का पालन करता है, समाज, सभा, परिवार का हित करता है, ऐसे व्यक्ति का उत्साह बढ़ाना चाहिये। सार्वजनिक रूप से जो सम्मान देने की परम्परा है, किसी के लिए ताली बजाने की परम्परा है, किसी को प्रशस्ति-पत्र देने की परम्परा है, यह परम्परा उन गुणों को बढ़ाने के लिए है। इसलिए समाज में परिवार में यह हमें विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति कुछ भी, छोटा भी अच्छा करता है तो हमें उसकी प्रशंसा करनी चाहिये। प्रशंसा सार्वजनिक रूप में करनी चाहिए, प्रशंसा अच्छे शब्दों में करनी चाहिए। इसके लिए भर्तृहरि महाराज ने एक बहुत ही सुन्दर पंक्ति लिखी है जिससे पता लगता है कि हम किसी के गुणों के लिए कैसी भावना रख सकते हैं। वो कहते हैं-

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूष पूर्णाः,
त्रिभुवननुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुण परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

सामान्य रूप से हमें किसी के गुण देखने की आदत नहीं होती, लेकिन जो सज्जन हैं, सभ्य हैं, उत्कृष्ट हैं, सन्त हैं वे जिनके मन में, वाणी में, जिनके शरीर में (**मनसि, वचसि काये पुण्य पीयूष पूर्णाः**) अमृत भरा हुआ है और सबका भला करना चाहते हैं, किसी का बुरा नहीं चाहते, ऐसे लोग सन्त हैं। **त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः** वे बढ़ते रहते हैं, उनको तृप्त करते रहते हैं, पुण्य को आगे बढ़ाते रहते हैं। ऐसे लोगों का मन कैसा होता है? **परगुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य**- सामान्य रूप से हमको बहुत गुण होने पर भी गुण दिखाई नहीं देते। दूसरे के दोष और अपने गुणों का व्याख्यान करते रहने का हमारा स्वभाव होता है।

खल सर्षपमात्राणि पराच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।।

जो दुष्ट होता है, वह दूसरे के सरसों जितने दोषों को भी बड़े-बड़े करके देखता है और अपने बड़े-बड़े दोषों को भी गिनता नहीं है, यह प्रवृत्ति दुष्ट की होती है, असज्जन की होती है। लेकिन इससे उल्टी प्रवृत्ति सज्जनों की है। इसलिए भर्तृहरि ने कहा परगुण-परमाणून्- दूसरों के परमाणु जितने गुण, छोटे से छोटे, ऐसे गुणों पर भी जिनकी दृष्टि रहती है। **पर्वतीकृत्य**- और उन परमाणु जितने गुणों की इतनी प्रशंसा कि परमाणु रूप गुणों को वे पर्वताकार देखने लगते हैं। **निजहृदि विकसन्तः**- दिखावा नहीं करते, केवल कहने के लिए नहीं कहते, बल्कि अपने अन्दर उन गुणों का अनुभव करके हर्षित होते हैं, आनन्दित होते हैं, आह्लादित होते हैं। यह उनका स्वभाव है। नियम यह है कि समाज में आप जिसका सम्मान करोगे वह चीज बढ़ेगी। आप चोरों का सम्मान करोगे, चोरी बढ़ेगी, धूर्तों का सम्मान करोगे धूर्तता बढ़ेगी, ठगों का सम्मान करोगे, ठगी बढ़ेगी। यदि उनको दण्डित करोगे, हतोत्साहित करोगे, उनकी आलोचना करोगे, वे कम होंगे। इसलिए समाज ने एक नियम बनाया कि जो अच्छा करता है, चाहे थोड़ा भी अच्छा करता है, उसकी प्रशंसा करनी चाहिये और प्रशंसा भी दिल खोलकर करनी चाहिये, अच्छे शब्दों में करनी चाहिये। ऐसा करने से व्यक्ति दोबारा अच्छा करने के लिए उत्साहित होता है, प्रेरित होता है। इसलिए समाज का नियम है, संसार में जो भी अच्छा करे, उसकी प्रशंसा करें। इतना ही नहीं, यदि आपके शत्रु के द्वारा भी कोई अच्छा काम होता है, सबके हित की बात होती है तो उसकी भी प्रशंसा करनी चाहिये, ऐसा करने से कभी हानि नहीं होती, उसका लाभ ही होता है, उसका सद्भाव भी मिलता है। इसके साथ ही यदि दूसरा कोई व्यक्ति अनुचित करता है, गलत करता है, अपराध करता है, पाप करता है तो उस स्थिति में हम क्या

कर सकते हैं? यदि हम उससे लड़ेंगे तो हमारी शत्रुता हो जाएगी और वह व्यक्ति बलवान हुआ, समर्थ हुआ तो हमारे लिए तो संकट पैदा कर देगा। तो क्या उसकी आलोचना करें? हाँ, यदि उसकी आलोचना सम्भव है, आप उसे व्यक्तिगत रूप से कह सकते हैं कि यह ठीक नहीं है। व्यक्तिगत रूप से कहने की भी स्थिति नहीं है तो आप कुछ भी मत कहिये, उसका साथ मत दीजिये। क्योंकि साथ देंगे तो अपराधी बनेंगे, विरोध करोगे तो शत्रुता आयेगी। शत्रुता निभाने का सामर्थ्य हमारा नहीं है और मित्रता करके अपराध में हम सम्मिलित नहीं हो सकते। ऐसी परिस्थिति में हम तटस्थ रहेंगे, उदासीन रहेंगे। जैसाकि **योग दर्शन** के एक सूत्र में कहा है–

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

इसकी विशेष चर्चा किसी और सन्दर्भ में करेंगे, यहाँ केवल इतना ही जानना अभिप्राय है कि यदि हम अनुचित का विरोध करने का सामर्थ्य नहीं रखते तो हमें उसका साथ भी नहीं देना चाहिये, तटस्थ रहना चाहिये। जो उसको सँभाल सकता है, जिसका क्षेत्र है वह उसको देखेगा। नियम यह है कि यदि गलत है और उसको किसी ने यदि रोका है, तो उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। चार आदमी उसे कहेंगे तो उसे सहन करने का सामर्थ्य वह नहीं रखता, उसे वहाँ से हटना पड़ेगा। लेकिन यदि कोई भी उसे कुछ नहीं कहेगा तो उसका बल बढ़ेगा। अपराध अपराधी के सामर्थ्य से नहीं होते आदमी उनसे भयभीत होकर उसके अनुसार काम करता है, उसके अनुसार चलता है, उसका कहना मानता है। वह आतंक के द्वारा, भय के द्वारा ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं कि सारे व्यक्ति उनसे डरने लगते हैं। वे डराकर लोगों को अपने वश में कर अपने अनुकूल बनाते हैं।

समझने की बात यह है कि आदमी डरकर चलता है। अधिकांश समाज के व्यक्ति भयभीत होकर नियम का पालन करते हैं। जैसे एक दुष्ट व्यक्ति डर से लोगों को बुरे रास्ते पर चलाता है, वैसे ही राजा को, समस्त लोगों को दण्ड से लोगों को अच्छे रास्ते पर ले जाना चाहिये। वे दण्ड से भयभीत होते हैं और यदि किसी सज्जन या राजा से भयभीत होते हैं तो अच्छा काम करने लगते हैं। अच्छा अधिकारी आता है तो लोग सब मन्दिर जाने लगते हैं, सब धार्मिक बन जाते हैं और यदि अधिकारी दुष्ट आ गया, तो कोई भी दुष्टता करने में संकोच नहीं करता। इसलिए इस तथ्य को जानते हुए राजा को चाहिये कि वह दण्ड का भय समाज में उत्पन्न करे। **दण्डः शास्ति प्रजा सर्वा**। सारी प्रजा को दण्ड ही शासित करता है। **दण्डेवाभिरक्षति**, रक्षा भी दण्ड ही करता है। **दण्डः सुप्तेषु जागर्ति**, जो असावधान हैं, लापरवाह हैं, जो नियमों के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं, ऐसे लोगों का नियन्त्रण भी दण्ड ही करता है, उनको सम्भालता भी दण्ड ही है। इसलिए इस मन्त्र में धनुष के रूप में राजा को बताया गया है।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्य महाकवि 'सुरूर' पर नये-नये शोध- आर्यजनता को यह शुभ सूचना पाकर हार्दिक आनन्द होगा कि महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में उत्तराखण्ड में जन्मे आर्य महाकवि श्री दुर्गासहाय 'सुरूर' के काव्य, उनकी साहित्य को देन पर इस समय पाँच विश्वविद्यालयों से पाँच शोधार्थी पीएच.डी. कर रहे हैं। इन सबको ऐसी प्रेरणा देशभक्त मुसलमान साहित्यकार डॉ. अलिफ़ नाज़िम से प्राप्त हुई है। वही इनके मार्गदर्शक (guide) हैं। अब वह समय दूर नहीं जब उर्दू साहित्य के इतिहास-लेखकों को यह मानना पड़ेगा-लिखना पड़ेगा कि महाकवि 'सुरूर' अपने समय के सबसे बड़े उर्दू कवि थे। जो उनका उर्दू साहित्य के इतिहास में उल्लेख तक नहीं करते थे, वे अब यह लिख रहे हैं कि उर्दू साहित्य को देश-प्रेम, हुतात्माओं, गौ, विधवा, अनाथ-रक्षा व समाज-सुधार के विषय देने वाले महाकवि 'सुरूर' ही थे कोई और नहीं।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि जब सन् १९७० के लगभग 'सुरूर' जी को इतिहास में उनका समुचित स्थान दिलाने का उर्दू-हिन्दी पत्रों में हमने आन्दोलन छेड़ा तो उर्दू के सुयोग्य आर्य विद्वानों ने हमारा साथ न दिया। आर्यपत्रों ने यथा आर्यगज़ट, वैदिक धर्म तथा बाद में परोपकारी ने पूरा सहयोग किया।

मेरठ महाकवि की कर्मभूमि रही। मेरठ के उस युग के आर्यसमाजी सब उनके साथी-संगी व आगे लाने वाले थे, परन्तु वर्तमान में सुरूर की समाज-सेवा का एक भी प्रसंग मेरठ के पुराने समाजों के रिकॉर्ड से हमें किसी ने उपलब्ध न करवाया। महाकवि सुरूर ने जो यश पाया उसमें मेरठ के आर्यों का संरक्षण व सहयोग हमने खोद-खोद कर खोजा। मेरठ से कोई आगे न आया। अपने निधन से थोड़ा समय पूर्व सुरूर जी ने 'आर्य समाचार' मेरठ के प्रत्येक अंक में अपनी लम्बी-लम्बी कवितायें प्रकाशनार्थ दीं।

वे सब कवितायें साढ़े आठ सौ पृष्ठों के एक ग्रन्थ में अब छप चुकी हैं। इनके साथ 'आर्य समाचार' मासिक के उल्लेख से सारे आर्यसमाज का सिर ऊँचा हो गया है। मेरठ की कीर्ति को चार चाँद लग गये हैं। महाकवि का साहित्यिक उदय मेरठ से ही हुआ था।

शूरवीर रणबाँकुरा मेरठ से निकला- हमीं ने प्रभु की अपार कृपा से खोज करके यह घटना दी कि जब माण्डले में लाला लाजपतराय से कोई भारतीय बात भी नहीं कर सकता था, मिल नहीं सकता था, तब महर्षि का प्यारा, साहस का अंगारा 'सुरूर' माण्डले पहुँच गया। मेरठ से गया यह रणबाँकुरा लालाजी के दुर्ग तक तो पहुँच गया। लाला जी के मनोभावों पर सुरूर जी ने बर्मा में जो कविता लिखी वह साढ़े आठ सौ पृष्ठों के ग्रन्थ में भी छप गई है।

मित्रो! अब इतिहास में यह खुलकर आ गया है कि सुरूर के सीने की धधकती ज्वाला, मातृभूमि का प्रेम, गौ, अनाथ, विधवा, कृषक, दीन, दरिद्र का जो दर्द उसकी रचनाओं में है वह ऋषि दयानन्द की, पं. लेखराम की देन है। ये पाँच गवेषक इस समय सुरूर जी पर कार्य कर रहे हैं।

१. श्री सईद जावेद रसूल- मराठवाड़ा विद्यापीठ से।

२. श्री देवेन्द्रसिंह इलाहाबाद विश्वविद्यालय से।

३. मुहम्मद सुहेल अरबी, फारसी, उर्दू विश्वविद्यालय लखनऊ से।

४. श्री रिज़वान अहमद- रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली।

५. मोहम्मद इमरान- जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली से।

इस विषय पर लिखने को बहुत कुछ है। दस दिन तक 'सुरूर' जी पर साढ़े आठ सौ पृष्ठ का ग्रन्थ हम तक पहुँच जावेगा। उसके विमोचन का अवसर आने दीजिये, फिर दिल खोलकर लिखेंगे व कहेंगे। उत्तराखण्ड की सभा, किसी समाज ने हमारे पत्रों का उत्तर तक न दिया। **अब इतना तो कोई बता दो कि आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द और आर्य महापुरुषों पर एक साथ पाँच गवेषक**

कहाँ कार्य कर रहे हैं?

महाकवि सुरूर का साहस व देश-अनुराग- हमारी पुस्तकमाला 'तड़पवाले तड़पाती जिनकी कहानी' का तीसरा भाग पाँच जुलाई तक प्रकाशक द्वारा प्रकाशनाधीन चला जावेगा। उसमें हमने आर्यसमाज तथा देश के स्वराज्य संग्राम से जुड़े दो-चार ऐसे प्रेरक प्रसंग दिये हैं जो दीखने में तो महाकवि दुर्गासहाय जी 'सुरूर' के जीवन की घटनायें लगती हैं, परन्तु थोड़ा विचार करने पर प्रत्येक इतिहासप्रेमी यह कहेगा कि ये तो हमारे स्वराज्य-संग्राम तथा आर्यसमाज के इतिहास की बेजोड़ घटनायें हैं।

लाला लाजपतराय देश के सबसे पहले नेता थे, जिन्हें अंग्रेज सरकार ने देश से निर्वासित करके माण्डले के दुर्ग में बन्दी बनाया था। उनके कुछ ही दिन पश्चात् महान् क्रान्तिकारी वीर अजीतसिंह (हुतात्मा भगतसिंह के चाचा) को भी बन्दी बनाकर वहीं माण्डले के दुर्ग में निर्वासित किया गया। दोनों को एक-दूसरे के वहाँ होने का पता तक न लगने दिया गया, परन्तु दोनों को इस बात का जैसे कैसे पता लग ही गया। दोनों एक-दूसरे को वहाँ रहते हुए देख न सके। परस्पर बात करने का तो प्रश्न ही नहीं था।

वह दमन, दलन व घुटन का युग था। बर्मा में बड़ी संख्या में भारतीय थे, परन्तु लालाजी के दर्शन तक कोई नहीं कर सकता था। जब वह दुर्ग के छत पर भ्रमण करते थे तो दुर्ग के आस-पास से जाने वाला कोई भारतीय उन्हें देखकर नमस्ते भी नहीं कर सकता था। जब इतना आतंक था तब मेरठ नगर का एक सिरफिरा देशभक्त आर्यसमाजी लालाजी से मिलने के लिये चल पड़ा। न सरकार का भय और न जेल की यातनाओं की कुछ परवाह। इतनी दूर जाने के लिये न जाने उसने मार्गव्यय का प्रबन्ध कैसे किया।

उस विषम वेला में लालाजी के जो घनिष्ठ मित्र थे लगभग वे सब उन्हें छोड़ गये। इतिहास का यह काला पृष्ठ किसी से लुका-छुपा तो है नहीं। उस काल में महाकवि दुर्गासहाय 'सुरूर' के मन में देश तथा आर्यसमाज के इस प्यारे व पूज्य नेता के दर्शन करने का भूत सवार हुआ। कहाँ मेरठ और कहाँ माण्डले! सरकार कहाँ मिलने देती थी? तो इसको वहाँ जाने से मिला क्या? इसने वहाँ किया क्या?

इतनी बात तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि यह घटना देश के स्वराज्य-संग्राम तथा आर्यसमाज दोनों के इतिहास में बेजोड़ व अनूठी है। आज पर्यन्त देश के किसी भी इतिहासकार ने और न ही मेरठ के किसी आर्यसमाजी ने तथा आर्यसमाज की किसी सभा ने इस प्रसंग की कहीं चर्चा की? महाकवि तब मेरठ रहते थे। क्या वहाँ किसी को पता न लगा? देश का दुर्भाग्य समझिये कि जब हमने सप्रमाण यह घटना प्रकाशित कर दी तब आर्यसमाज में फिर से इसको मुखरित किया गया। 'सुरूर' जी ने बर्मा जाकर लालाजी पर एक गीत लिखा। हमने एक उर्दू मासिक तथा 'ख़्यालाते लाजपत' में उसे पढ़ा। वहाँ स्पष्ट छपा था माण्डले में रचा गया गीत। ये दोनों अलभ्य स्रोत हमारे पास हैं।

ऋषि दयानन्द के शिष्य भी कैसे सिरफिरे थे!

'अनादि नाद' ग्रन्थ में क्या है?- आर्यसमाज नया बाँस दिल्ली इस वर्ष अपना शताब्दी महोत्सव बनाने का निश्चय कर चुका था। देश में महामारी के फैलने से उनके मन की मन में ही रह गई। इस अवसर पर समाज एक स्मारिका का प्रकाशन करना चाहता था। इसके सम्पादक का दायित्व हमें सौंपा गया। हमने उनकी सेवा में निवेदन किया, ''स्मारिका को कौन पढ़ता है? स्मारिकायें रद्दी में जाती हैं। यह धन की बर्बादी है। यदि आप इस महोत्सव पर ऐसा कोई स्मरणीय कार्य करना ही चाहते हैं तो एक ठोस मौलिक ग्रन्थ का प्रकाशन करके इस परम्परा को आगे बढ़ायें। इसमें सिद्धान्त खण्ड हो, इतिहास खण्ड हो, काव्य वाटिका हो, आर्यसमाज नया बाँस के इतिहास की झाँकियाँ हों। आर्यसमाज के विचारकों, नेताओं, महात्माओं के दुर्लभ परन्तु स्थायी महत्त्व के लेख हों।''

समाज के विचारशील सज्जनों को यह विचार जँचा ही नहीं- खूब भाया। स्वल्पकाल में हमने '**अनादि नाद**' नाम के इस ग्रन्थ को रच दिया। इस आर्यसमाज के मन्दिर की आधारशिला देवतास्वरूप पूजनीय भाई परमानन्द जी ने रखी। यह ग्रन्थ छप चुका है, परन्तु इस विनीत ने इसके दर्शन अभी तक नहीं किये। देश भर में छन-छन कर इसकी चर्चा दूर-दूर तक पहुँच चुकी है। हमीं से पूछा जा

रहा है, 'इसमें क्या-क्या है?'

१. इसकी पहली विशेषता यह है कि स्वामी श्रद्धानन्द शौर्य शताब्दी वर्ष में इतना बड़ा, ठोस, मौलिक और पठनीय ग्रन्थ पूज्य भाई जी को आर्यों ने पहली बार समर्पित करके स्वयं को गौरवान्वित माना है। आर्यसमाज नया बाँस ने ऐसा करके आर्यसमाज का सिर ऊँचा कर दिया है।

२. इस ग्रन्थ में भाई जी को फाँसी-दण्ड (फिर काले पानी भेजने) सुनाये जाने वाली केस की एक पेशी पर कोर्ट की कार्यवाही का वृत्तान्त (तत्कालीन एक पत्र से लेकर) इस ग्रन्थ में दिया गया है। उस दिन भाई जी के साथ लालाजी को फँसाने के लिये लाला लाजपतराय जी को बुलाकर उनसे उलटे-सीधे प्रश्न पूछे गये। आर्यों के किसी ग्रन्थ में पहली बार इस पुरालेख (document) को प्रकाशित किया गया है। पता लगने पर यह पूछा जा रहा है, ''यह सामग्री आपको कहाँ से मिली?''

पूछने वालों को बताया जा रहा है, ''किसी नेता ने, किसी सभा-संस्था ने यह दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं करवाया। यह तो ऋषि-मिशन की नींव के एक पत्थर हमारे प्यारे आर्यवीर राहुल आर्य अकोला के पुरुषार्थ का फल है। हमें इस देन पर अभिमान क्यों न हो?''

३. आर्यसमाज नया बाँस के पास अपने इतिहास का कोई भी रिकॉर्ड-वार्षिक रिपोर्ट नहीं। हमने ८२ वर्ष पूर्व इस समाज को देखा था। तबसे इससे जीवन्त सम्बन्ध है। इस समाज के ही एक कर्णधार ने आर्यसमाज के इतिहास में सबसे लम्बा व्याख्यान दिया। वह आठ घण्टे लगातार सत्यार्थप्रकाश रक्षा आन्दोलन में बोलते रहे। यह सुवक्ता थे प्रो. रामसिंह जी। जो कुछ लिखा है उसका पक्का व पूरा प्रमाण इस ग्रन्थ में दिया है।

४. आर्य सत्याग्रह हैदराबाद में पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के पश्चात् इसी समाज के एक पूर्व प्रधान श्री क्षितीश जी वेदालङ्कार को अपने जत्थे के साथ जेल जाने का गौरव प्राप्त है, ऐसा न्यारा-प्यारा इतिहास इस ग्रन्थ में पाठक देखें।

इस आर्यसमाज के गवेषक पद्धति के अत्यन्त स्वाध्याशील सेवक श्री चन्दनसिंह को इस समाज में आज कोई नहीं जानता। हमने इस क्षेत्र में उसे वैदिक धर्म का डंका बजाते देखा था। वह संन्यासी बनकर काशी के और वैदिक धर्म प्रचार करके आर्यों के पूज्य बने। आर्यसमाज के इतिहास की इस विलक्षणता की इस ग्रन्थ में विशेष चर्चा है। वर्तमान में दिल्ली के एक जानकार समाज के संस्थापक और प्रधान श्री अंगदसिंह भी कभी नया बाँस समाज के सेवक थे। क्या यह कोई छोटी देन है?

सैद्धान्तिक दृष्टि से इस 'अनादि नाद' ग्रन्थ में क्या है? मित्रो! हमारा उत्तर है क्या नहीं है? पं. रामचन्द्र जी देहलवी की पुस्तक के कठिन फ़ारसी शब्दों का भारतीयकरण करके 'दो सनातन सत्तायें' से इसे आरम्भ किया है, इसके आगे इस लेखक की मौलिक पुस्तक 'वैदिक इस्लाम' दी गई है।

पुस्तक में 'परमात्मा के प्रतिद्वन्द्वी' उपाध्याय जी का एक लेख और ऐसे और कई लेख हैं। आर्यसमाज के पुराने कई नेताओं तथा विद्वानों के लेख, कई पुस्तकों का सार। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज सिखों के जत्थेदार बनकर जेल गये थे। पिंजरे में बन्दी बनाकर उन्हें रखा गया। उनकी पुस्तक 'मेरे बन्दीघर के विभिन्न अनुभव' इस ग्रन्थ में मिलेगी।

पश्चिम में प्रकाशित किसी भारतीय विचारक (ऋषि जी) पर छपा पहला लेख '**अनादि नाद**' में पढ़िये। '**महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव**' और '**ज्ञान घोटाला**' जैसी कई पुस्तकें देकर फिर कुछ सामग्री अंग्रेजी में तथा काव्य-खण्ड पाठकों में उत्साह भरता है।

''अल्लाह चाहे भी तो हमें अपनी सृष्टि से नहीं निकाल सकता'' सर सैयद का यह वाक्य क्या यह सिद्ध नहीं करता कि इस्लाम भी वैदिक धर्म के रंग में रंग गया है। कभी कहा जाता था कि अल्लाह सब कुछ कर सकता है। '**हमें निकाल कर तो दिखाये**' यह चुनौती जो आर्यसमाज ने दी आज के इस्लाम का मुख्य सिद्धान्त बन चुका है।

हम अपने ही ग्रन्थ पर इससे अधिक कुछ नहीं लिख सकते।

आर्यसामाजिक साहित्य में नई क्रान्ति- पटियाला राज्य की ओर से आर्यसमाज पर चलाये गये राजद्रोह के ऐतिहासिक केस के एक अधिगुरु 'सर नाहर वीर खण्डू सैनी' पुस्तक समस्त पाठकों के हाथों में शीघ्र ही पहुँच

जावेगी। उस केस के अन्य अभियुक्त तो एक ही बार बन्दी बनाये गये, परन्तु वीर खण्डू सैनी को दो बार बन्दी बनाया गया। उसे एक मास तक तो सबसे अलग-थलग रखकर बहुत सताया और दबाया गया। सरकार उसे आर्यसमाज के विरुद्ध कुछ कहने के लिये यातनायें देती रही, परन्तु वह **आर्यसमाज की सबसे सशक्त कड़ी सिद्ध हुआ।**

वह धर्मवीर था कौन? वह पटियाला आर्यसमाज का युवा सेवक था। महात्मा मुंशीराम जी और पं. चमूपति जी ने उसकी शूरता वीरता पर बहुत कुछ लिखा। किसी ने 'चपरासी' लिखकर उस पर दो वाक्य न लिखे। उसके नाम, ग्राम, जिले का नाम तक हमने खोज निकाला। यह आर्यसमाज और स्वराज्य संग्राम के इतिहास में किसी संगठन के एकमेव सेवक की, शूरवीर की जीवनी है। उसने आर्यसमाज का सिर ऊँचा कर दिया। उसकी इस जीवनी का प्रकाशन आर्यसामाजिक साहित्य के इतिहास में एक बहुत बड़ी क्रान्ति है।

हमने इस साठ पृष्ठ की पुस्तक लिखने के लिये कितनी सघन खोज की यह पारखी, गुण ज्ञानी ही बतायेंगे। जो उसे चपरासी मानकर उसकी उपेक्षा करते रहे वे बलिदान व संघर्ष का महत्त्व क्या जानें? आर्यसमाज की अगली पीढ़ी के युवक इसके प्रसार में सक्रिय सहयोग करें।

आर्य युवकों का आन्दोलन सफल हुआ- कई वर्षों से रामपाल जैसे गुरुओं तथा विधर्मियों की प्रेरणा व सब प्रकार की सहायता से उनका एक एजेन्ट आर्यसमाज के विरुद्ध विषैला प्रचार करके जाटों को आर्यों से काटने में लगा था। कोई सभा उसका इलाज नहीं कर रही थी। डॉ. धर्मवीर जी भी इस षड्यन्त्र और शरारत से चिन्तित थे। उन्हें कहा गया कि प्रत्येक वार-प्रहार का प्रामाणिक उत्तर-प्रत्युत्तर तो यह सेवक देता रहेगा, परन्तु इसके आगे कोई दृढ़ आर्य जाट लगे। चौधरी मित्रसेन जी से भी बात की। हमारे ये दोनों रत्न हमसे छिन गये।

सबको यह बताया कि इस नये शत्रु को लीडरी का चाव है। यह ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज के विरुद्ध विष-वमन करके प्रसिद्धि पाना चाहता है।

'बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा'

धर्मवीर जी का कहा, डॉ. सुरेन्द्र जी और मुझसे पूछ-पूछ कर किये गये हर आक्रमण का उत्तर दिया जावे। उसे हैदराबाद के ओवैसी की रज़ाकारों वाली पार्टी का आशीर्वाद व समर्थन प्राप्त था। ऐसा भी सुनने में आया। इसकी उस तक पहुँच हो गई या वे लोग इस तक पहुँचे।

हरियाणा के युवा आर्यवीरों ने मोर्चा सम्भाला। गाँव-गाँव तक अमर हुतात्मा भक्त फूलसिंह जी और महाराज स्वतन्त्रानन्द के लाड़ले पहुँचे। प्रिं. अभय आर्य, श्री विकास आर्य, प्रिय अमित जैसे दिलजलों ने दिनरात एक कर दिया। ये सभी मोर्चा गर्म करने के लिये दिन में चार-चार पाँच-पाँच बार अरिदल से लोहा लेने के लिये चलभाष पर शत्रु को क्या और कैसे उत्तर देना है, यह पूछते रहते थे। हरियाणा सभा को हम बधाई देते हैं कि हरियाणा के इन आर्यवीरों की तपस्या रंग लाई है।

मोर्चा हमने जीत लिया है। शत्रुता पर तुले हुये, उस बहकाये गये विरोधी ने हरियाणा सभा के कार्यालय पहुँच कर लिखित क्षमा माँग ली है। हमें साथ के साथ यह शुभ सूचना मिल गई। खेद है कि सभा के किसी भी व्यक्ति ने श्री अभय और उनके कुछ साथियों को 'क्षमा-पत्र' लेते हुये बुलाया ही नहीं। इस सेवक से चलभाष पर सम्पर्क तक न किया। श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी तथा इस सेवक ने अन्तिम लड़ाई की मिलकर योजना बना ली थी एवं डॉ. वेदपाल जी ने सोशल मीडिया पर तर्कपूर्ण विरोध पत्र भी प्रकाशित किया था। इस आन्दोलन का इतिहास हम लिखेंगे। आर्यसमाज की इस विजय पर सारे आर्यजगत् को बधाई। जो बोले सो 'अभय'।

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं। (व्य. भा.)

ऐतिहासिक कलम से....

क्या विदेश-यात्रा पाप है?
आचार और अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य विवेचन
(सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास के आधार पर)

पण्डिता पवित्रा देवी 'विद्याविभूषिता'

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पौराणिक मतावलम्बियों ने चूल्हे-चौके, छुआछूत और जाति-पाँति के भेद तक ही समस्त धर्म-कर्म को केन्द्रित कर दिया। इसी ने जाति को कूपमण्डूक बना दिया, जिसका परिणाम गत एक सहस्त्र वर्ष की दासता के रूप में देश को भोगना पड़ा। ऋषि ने इस समुल्लास में आचार क्या है और अनाचार क्या है तथा भक्ष्य और अभक्ष्य क्या है- इस विषय का धार्मिक विवेचन किया है। प्रसंग से क्या विदेश-यात्रा पाप है, मांस-भक्षण निषिद्ध है या नहीं, भारत की पराधीनता का कारण क्या है और गोरक्षा के महत्त्व पर भी संक्षिप्त चर्चा आई है। विदुषी लेखिका ने इन्हीं विषयों को प्रस्तुत लेख में उपस्थित किया है। -सम्पादक

धर्म के दो अंग हैं-विचार और आचार। विचार का सम्बन्ध बुद्धि के साथ है और आचार का सम्बन्ध जीवन के साथ। ईश्वर का स्वरूप, सृष्टि की उत्पत्ति और मोक्ष की प्राप्ति आदि विषयों का विवेचन जहाँ विचार-कोटि में आता है वहाँ वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में मनुष्य को कैसे बर्ताव करना चाहिये यह आचार कहलाएगा। बहुत बार '**आचारः परमो धर्मः**' या '**आचारः प्रथमो धर्मः**' कहकर आचार को धर्म का मुख्य अंग बताया गया है। आचार धर्म का मुख्य अंग इसलिए है कि जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है, उसमें मतभेद की सम्भावना हो सकती है, परन्तु जहाँ तक आचार का सम्बन्ध है, उसमें मतभेद की सम्भावना नहीं है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में विचार-भेद को कभी अक्षम्य नहीं माना गया, किन्तु आचार-भेद को सदा घृणा की दृष्टि से देखा गया। विचार-सम्बन्धी सहिष्णुता और आचार सम्बन्धी असहिष्णुता जैसे भारतीय संस्कृति के अंग ही बन गए।

धर्म आचार-प्रधान है- मनुस्मृति में ''**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।**'' कहकर जो धर्म के दस लक्षण बताए गये हैं उनका सम्बन्ध भी जितना आचार के साथ है, उतना विचार के साथ नहीं। **योग दर्शन** में ''**शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः**'' और ''**तत्र हिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः**'' कहकर जो यम और नियमों की परिभाषा की गई है और जो यम और नियम मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की उन्नति के मूल कारण हैं, उनका भी आचार के साथ ही सम्बन्ध है।

आचार एक व्यापक शब्द है। आचार्य शब्द भी आचार से ही बनता है- ''**आचारं ग्राहयति इति आचार्यः**'' का अर्थ यही है कि आचार्य का मुख्य कर्त्तव्य अपने शिष्य को आचारवान् बनाना है। केवल पुस्तकस्थ विद्या पढ़ाने वाले या परीक्षाएं पास कराने वाले शिक्षक को आचार्य नहीं कह

सकते। भारतीय संस्कृति में आचार्य का महत्त्व इसीलिये है कि वह अपने जीवन के उदाहरण से अपने शिष्य को सदाचार की प्रेरणा देता है। मनुष्य कैसे सोता-जागता है, कैसे खाता-पीता है, कैसे उठता-बैठता है, कैसे बातचीत करता है- इन सब क्रियाओं से मनुष्य का आधार प्रकट होता है। दैनन्दिन जीवन की प्रत्येक क्रिया से प्रकट होने वाले आचार को सुधारना ही आचार्य का कर्त्तव्य है।

मानव जीवन के विकास के लिए सोलह संस्कारों के रूप में जो सोलह सीढ़ियाँ बताई गई हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों का वर्णन किया गया है वह भी धर्म के आचार-प्रधान होने की ओर ही संकेत है। जिस-जिस कर्म से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, जगत का उपकार हो, वह मनुष्य का कर्त्तव्य कर्म है और उसी को धर्म या आचार कहना चाहिये और जो इससे विपरीत कर्म है उसको अधर्म या अनाचार कहना चाहिये। जो सत्यवादी, धर्मात्मा और परोपकारी लोग हैं सदा उनका संग करना और उनके आचरण के अनुसार अपने आचरण को ढालना सदाचार या श्रेष्ठाचार कहलाएगा और इसके विपरीत आचरण दुराचरण कहलाएगा।

विदेश-यात्रा पाप नहीं- आचरण की इतनी व्यापक परिभाषा होने पर भी हिन्दू-समाज में चिरकाल तक समस्त धर्म-कर्म केवल चूल्हे-चौके तक ही व्याप्त रहा और किसी के हाथ का छुआ हुआ भोजन न करने में ही आचार की पराकाष्ठा समझी जाने लगी। इसी मनोवृत्ति के कारण विदेश-यात्रा को भी सबसे बड़ा अनाचार या पाप समझा जाने लगा, परन्तु क्या विदेश-यात्रा करने से आचार नष्ट हो जाता है? अब से कुछ दशाब्दियों पहले तक लोगों में यह मिथ्या धारणा बनी रही है कि विदेश-यात्रा करने से विधर्मियों और म्लेच्छों से संपर्क होता है और उस सम्पर्क के कारण आर्यों का आचार नष्ट हो जाता है, इसलिये विदेश-यात्रा नहीं करनी चाहिए और तो और, अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक काल में कतिपय ऐसे महापुरुषों का जाति से बहिष्कार तक किया गया, जिन्होंने समाज के विरोध के बावजूद उस समय विदेश-यात्रा करने का साहस दिखाया था। छूत-छात और जात-पाँत में आपादमस्तक मग्न समाज में आये दिन ऐसी घटनाएँ होती रहती थीं। बिरादरियों का मुख्य काम केवल यही हो गया था कि अमुक व्यक्ति ने अमुक के हाथ का छुआ हुआ भोजन कर लिया या पानी पी लिया या अमुक समुद्र-पार देश की यात्रा कर आया है इसलिये उसका बिरादरी में हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाये और उसको जाति से बहिष्कृत कर दिया जाये। आजकल तो विदेश-यात्रा ऐसा फैशन बन गया है कि यह एक बीमारी की सीमा तक पहुँच गया है इसलिये शायद आज की पीढ़ी उस युग की कल्पना न कर सके, जब केवल विदेश-यात्रा करने वाले व्यक्ति का ही नहीं, किन्तु उस व्यक्ति से कुछ भी सम्पर्क रखने वाले अन्य सब व्यक्तियों का भी बहिष्कार कर दिया जाता था। परन्तु, आज भी ऐसे अनेक वृद्ध जन विद्यमान हैं, जिन्हें अपनी जवानी के दिनों में समाज-सुधार के किसी भी काम के लिये जाति-बहिष्कार का दण्ड भोगना पड़ा था।

क्या विदेश-यात्रा पाप है? क्या हमारे पूर्वज विदेश-यात्रा को पाप समझते थे? इतिहास इससे सर्वथा उलटी बात कहता है। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार देश की राजकन्या गान्धारी से हुआ था। अर्जुन का विवाह पाताल देश (अमेरिका) के राजा की कन्या उलोपी से हुआ था। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अश्वतरी अर्थात् अग्नियान नौका में बैठकर पाताल देश गये थे और वहाँ से उद्दालक ऋषि को युधिष्ठिर के यज्ञ के निमित्त लेकर आये थे। जब महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था तब अनेक देशों के राजाओं को निमन्त्रण देने के लिए भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे। अगर वे विदेश यात्रा में दोष मानते होते तो ऐसा कभी न करते। प्रत्युत उस समय के आर्य लोग अपने राजकार्य, व्यापार और भ्रमण आदि के लिए देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में घूमने के अभ्यस्त थे। भारतवर्ष की विगत एक सहस्त्र वर्षों की पराधीनता का मुख्य कारण ही यह था कि यहाँ के लोग बाह्य संसार से आँखें बन्द करके, कूपमण्डूक बनकर, अपने कुल, जाति, कबीले, सरदार या राजा के गुणगान में ही मस्त रहकर जीवन की इति कर्त्तव्यता समझने लगे थे।

भारतवर्ष के निवासियों में विद्या, बल, बुद्धि और पराक्रम की कभी कमी नहीं रही, परन्तु छुआ-छूत स्पर्श मात्र से धर्म नष्ट होने की शंका और कूपमण्डूकता ने देश

को अध:पतन के ऐसे गर्त में गिरा दिया कि वह एक सहस्र वर्ष तक उस गर्त से निकल नहीं सका।

इतिहास की शिक्षा- कोई भी इतिहासकार पूछ सकता है कि जब बाबर के पास तोप थी तब राणा साँगा के पास तोप क्यों नहीं थी। अत्यन्त पराक्रमी होते हुए भी राणा साँगा को पराजय का मुँह इसीलिये तो देखना पड़ा कि उसके सेना के तीर और तलवार बाबर की तोपों के गोलों का सामना नहीं कर सके। जब संसार में एक बार तोप का आविष्कार हो गया तब वह यदि बाबर को सुलभ हो सकती थी तो राणा साँगा को भी सुलभ हो सकती थी, परन्तु उन अप्रतिम शूरवीर राजपूत योद्धाओं की कूपमण्डूकता ही पराजय का सदा कारण रही।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जो लोग मांसभक्षण, मद्यपान और वेश्यागमन तक में पाप नहीं समझते वे देश-देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम द्वारा ज्ञान-विज्ञान की उन्नति को आचार-भ्रष्टता और अधर्म मानते रहे। इस प्रकार की मिथ्या धारणा ही भारत के अध:पतन का इतिहास है-इसी मनोवृत्ति का यह परिणाम है कि जन्म जाति के अभिमानों से ग्रस्त अनेक ऐसे दम्भी लोग आज भी मिल जायेंगे जो छाती ठोककर यह कहते गर्व अनुभव करेंगे- ''बाबू जी हमने चोरी की, डाका डाला और संसार का कोई ऐसा पाप नहीं छोड़ा जो न किया हो, परन्तु आज तक अपना धर्म हाथ से नहीं जाने दिया, क्योंकि हमने आज तक कभी किसी दूसरे के हाथ का छुआ भोजन नहीं किया।'' **क्या सारा धर्म चूल्हे-चौके तक ही सीमित है।** इससे बढ़कर मूर्खता की बात और क्या हो सकती है! ऋषि ने दर्द भरे वाक्यों में लिखा है- ''**क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चित नहीं किया है कि राजपुरुषों में युद्ध-समय में भी चौका लगाकर रसोई बनाकर खाना अवश्य पराजय का हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते, जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को मारते जाना, अपना विजय करना आचार है और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते, विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा दिया और अब भी हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं...जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा कर नष्ट कर दिया है।**''

भोजन के साथ पाकशाला की सफाई तो आवश्यक है, परन्तु छुआ-छूत का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। जिन बातों को शास्त्रकारों ने धर्म बताया है उनका पालन करना स्वदेश में भी आवश्यक है और विदेश में भी। यदि कोई व्यक्ति वैसा ही आचरण करता है तो वह उतना ही ग्राह्य है जैसे कोई अपना स्वदेश-बन्धु या जाति-बन्धु। विदेश यात्रा में कोई पाप नहीं, प्रत्युत व्यापार- वाणिज्य और अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द तथा विश्व के घटनाचक्र से परिचित रहने के लिये विदेश यात्रा आवश्यक है।

मांस-भक्षण निषेध- परन्तु एक बात ध्यान देने की है कि विदेश जाने पर भी मांस-भक्षण और मद्यपान आदि व्यसनों से दूर रहना चाहिये। विदेशियों में इन दोनों बुराइयों को बुराई समझने की प्रवृत्ति प्राय: नहीं पाई जाती। इसलिये उनके संग से दुर्बल संकल्पवालों को इन कुलक्षणों के लगने की संभावना हो सकती है, परन्तु इन दुर्गुणों से विदेश में जाकर बचना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक स्वदेश में भी है। आजकल भारत में जो मांस-भक्षण और मद्यपान के प्रति जैसी रुचि बढ़ती जा रही है वह सर्वथा अनर्थकारी है। इन दुर्व्यसनों के प्रसार में पाश्चात्य शिक्षा बहुत बड़ा कारण है। मनुस्मृति ने ''**वर्जयेन् मधु मांसं च**'' कहकर बुद्धि का नाश करने वाले मदकारी द्रव्य का और मांस का सेवन स्पष्ट रूप से निषिद्ध बताया है।

प्राणी-शास्त्र की दृष्टि से इस सृष्टि में मांसाहारियों की शरीर-रचना से वनस्पति-भोजियों की शरीर-रचना बिल्कुल पृथक् है। परमात्मा ने शेर, व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओं को स्वभाव से ही मांसाहारी बनाया है। उनको शिकार करने में समर्थ बड़े-बड़े नाखून और नुकीले दाँत दिये हैं। मांसाहारी प्राणियों का आमाशय और अन्तड़ियाँ भी इस ढंग की बनाई गईं कि वे मांस को सुगमता से पचा सकें। जो वनस्पति-भोजी प्राणी हैं उनके दाँत, नाखून, आमाशय और अंतड़ियाँ मांसाहारी प्राणियों से भिन्न हैं। शरीर-रचना की इस दृष्टि से मानव के दाँत, नाखून, आमाशय तथा अंतड़ियाँ वनस्पति-भोजी प्राणियों से मिलती-जुलती हैं,

मांसाहारी प्राणियों से नहीं। प्रकृति में हम नित्य देखते हैं कि जो मांसाहारी जीव हैं वे कभी शाक-पात नहीं खाएँगे और जो वनस्पति-भोजी प्राणी हैं वे कभी मांस नहीं खाएँगे। उनकी शरीर-रचना की यही माँग है परन्तु, मनुष्य ऐसा विचित्र प्राणी है जिसने अपने शरीर को रचना वनस्पति भोजी प्राणियों के अनुकूल होने पर भी, मनुष्य के लिये सर्वथा अस्वाभाविक मांसाहार को प्रश्रय दिया है। मानव शरीर में नित्य नई व्याधियों का बहुत बड़ा कारण मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन है। अल्पायु में लगातार बढ़ती मृत्यु संख्या का भी दोष इसी को दिया जा सकता है।

पुरानी कहावत है कि ''**जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन**'' यदि मन को शुद्ध और सात्त्विक बनाना है जो कि धर्म के पथ पर अग्रसर होने वाले मनुष्य के लिये पहली सीढ़ी है, तो उसे अपने मन को शुद्ध रखने लिए सबसे पहले भोजन पर नियन्त्रण करना होगा। तामसिक पदार्थों के खाने से मनुष्य के अन्दर तामसिक वृत्तियाँ पैदा होंगी। तामसिक वृत्तियाँ पाप की ओर ले जाएँगी और सात्त्विक वृत्तियाँ धर्म की ओर। मनुष्य को पाप की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये यह कहने की हिमाकत बुरे से बुरा कूढ़मगज व्यक्ति भी नहीं करेगा। संसार के सब समझदार लोग धर्म के पथ पर बढ़ने का प्रयत्न करने का ही उपदेश देंगे। यदि धार्मिक जीवन अभीष्ट है तो मन की सात्त्विकता अनिवार्य है और जहाँ मन को सात्त्विक बनाने का प्रश्न आया वहाँ कदापि मांसादि तामसिक आहार के सेवन का समर्थन नहीं किया जा सकता।

भारतीयों की विशेषता- मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से मनुष्य के श्वास तथा त्वचा तक से कितनी दुर्गन्ध आने लगती है। इसके प्रमाणस्वरूप हम यहाँ प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक श्री विट्ठलदास मोदी की 'यूरोप यात्रा' नामक पुस्तक से एक उद्धरण दे रहे हैं। श्री मोदी फ्रांस में जब खेलर-दम्पती से मिले तब श्री खेलर ने उनसे कहा कि ''हम दोनों भारत को संसार में सबसे अच्छा देश मानते हैं। हम भारत के भक्त है और हमें भारतीय बहुत प्यारे हैं।''

क्यों, क्या आप कभी भारत आये हैं?

''जी हाँ, पिछले वर्ष हम दोनों बम्बई में होने वाले निरामिष भोजी संघ के विश्व-अधिवेशन के सिलसिले में भारत-यात्रा पर गए थे। यात्रा से पूर्व हमने भारत जानेवाले यूरोपीय यात्रियों के लिये अंग्रेजी में प्रकाशित कुछ साहित्य पढ़ा। पढ़कर हमारी धारणा यह बनी कि हम एक गरम और जंगली देश में जा रहे हैं, जहाँ गन्दे और असभ्य लोग रहते हैं। पर सुनिये, हम दुनिया भर में घूम चुके हैं और हम यह दावे से कह सकते हैं कि भारतीय सबसे अधिक साफ होते हैं। आप चौंकते हैं। हमारा मतलब सड़कों की सफाई से नहीं। हम तो यह कहते हैं कि उनके कपड़े भले ही गन्दे हों, किन्तु उनके शरीर में दुर्गन्ध नहीं आती। वे अपनी त्वचा पर सुगन्धित पाउडर आदि कृत्रिम चीज लपेटकर अपनी गन्दगी को छिपाकर साफ कहलाने का प्रयत्न नहीं करते। हम लोग रेल में बम्बई से दिल्ली जा रहे थे, सर्दी के कारण डिब्बे की सब खिड़कियाँ बन्द कर दी गई थीं और हमारे डिब्बे में पाँच भारतीय और थे। उनकी श्वासवायु इतनी निर्गन्ध थी कि सारी रात हम लोग सोये और सुबह तक भी डिब्बे में दुर्गन्ध नहीं थी। हम अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं कि यदि भारतीयों की जगह पाँच मांसभक्षी यूरोपियन व्यक्ति उस डिब्बे में होते तो दो घण्टे के अन्दर-अन्दर पूरा डिब्बा असह्य बदबू से भर जाता।'' ('यूरोप-यात्रा' पृष्ठ १२४)

विदेशी शासन का कारण-आपस की फूट- बहुत से लोग यह समझते हैं कि विदेशियों ने हम पर शासन इसीलिये किया क्योंकि वे मद्य-मांसादि का सेवन करने के कारण हमसे अधिक शक्तिशाली थे परन्तु, ऋषि ने इस भ्रम का निवारण करते हुए स्पष्ट लिखा है- ''आर्यावर्त में विदेशियों का राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना, न पढ़ाना, बाल्यावस्था में विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष के पहले हुई थीं उनको भी भूल गये। देखो, महाभारत-युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते-पीते थे। आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब

तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों के सब गुणों को छुड़ाकर दु:खसागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्र-हत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दु:ख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाये।''

गोरक्षा आवश्यक- इसके पश्चात् गाय आदि दुधारु पशुओं की उपयोगिता का वर्णन करते हुये ऋषि ने लिखा है-''जब आर्यों का राज्य था तब ये गाय आदि महोपकारक पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्य आदि प्राणी वर्तते थे। क्योंकि गाय, बैल आदि की बहुताई होने से दूध, घी, अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जबसे विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारनेवाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से आर्यों के दु:ख की बढ़ती होती जाती है।'' **गोरक्षा के लिये ऋषि कितने आतुर थे यह इसी से समझा जा सकता है कि गोरक्षा के निमित्त सबसे पहला आन्दोलन इस देश में ऋषि दयानन्द ने ही किया था।** उन्होंने अग्रेंजी राज्य में गोवध बन्द करवाने के लिये लाखों आदमियों से हस्ताक्षर करवाके एक मेमोरेण्डम (स्मरण-पत्र) महारानी विक्टोरिया के पास पहुँचाया था। इसके अतिरिक्त गौ की उपयोगिता पर पूरी तरह प्रकाश डालने के लिये उन्होंने इस विषय पर 'गो करुणानिधि' नाम से एक पृथक् पुस्तक भी लिखी थी। परन्तु कितने दु:ख की बात है कि भारत के स्वाधीन हो जाने के बाद भी गोरक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा और अद्यापि गोवध पर पूर्णत: प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

भक्ष्य क्या अभक्ष्य क्या?- अन्त में गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, मित्र-मित्र और अन्य किसी के भी परस्पर उच्छिष्ट (जूठा) खाने का निषेध करते हुए और भोजन स्थान की सफाई का महत्त्व बताते हुए ऋषि ने भक्ष्याभक्ष्य विषय का समारोप करते हुए लिखा है जितनी हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छलकपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है यह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि और बल पराक्रम की वृद्धि और आयु-वृद्धि होवे उन पदार्थों का यथायोग्य पाक करके, यथोचित समय पर, मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है, इससे अन्यथा अभक्ष्य।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टि

डॉ. रामप्रकाश वर्णी डी.लिट्

(गताङ्क से आगे)

प्र. १०. पौराणिक पण्डित कालूराम शास्त्री ने अपनी कुख्यात पुस्तक 'आ. की मौत' के पृष्ठ-१८८ पङ्क्ति-७ में लिखा है कि ''यज्ञ में 'महावीर' नामक प्रजापति की प्रतिमाएँ बनती हैं'' अत: मूर्तिपूजा का प्रतिषेध करना उचित नहीं है।

उत्तर- यहाँ यह विशेष रूप से अवधेय है कि किसी शब्द की वर्णानुपूर्वी की तुल्यता को देखकर अर्धसाम्य को स्वीकार कर लेना अज्ञता की पराकाष्ठा ही माना जाता है। जैसे 'डुकृञ्-करणे' (धा.सू. ८/१२) धातु के परस्मैपद, लिट्लकार, प्रथम पुरुष के एक वचन में निष्पन्न होने वाला 'चकार' यह रूप 'कृ-विक्षेपे' (धा. सू. ६/११४), 'कृ-हिंसायाम्' (धा. सू. ९/२७) धातुओं के लिट् लकार, परस्मैपद, प्रथम पुरुषैक वचन में भी 'चकार' ही बनता है। यहाँ तीनों धातुओं के अर्थ की भिन्नता के कारण एक जैसे दिखने वाले तीन 'चकार' पदों के अर्थ भी क्रमश: 'उसने किया', फैलाया या बिखेरा तथा 'उसने हिंसा की' के रूप में तीन प्रकार के होते हैं। इन तीनों पदों के रूपसाम्य के आधार पर इन्हें समानार्थक या एकार्थक समझना मतिमान्द्य ही है। ठीक यही स्थिति यहाँ प्रस्तुत प्रश्नगत इस 'महावीर' शब्द की भी है। वह कहीं 'विशेषण' है तो कहीं विशेष्य। प्रथम तो मनुप्रोक्त 'दश' प्रजातियों की गिनती में यह गिना ही नहीं गया है। अत: इसका प्रजापतित्व ही विपन्न है। तद् यथा-

अहं प्रजा: सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश।।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहंक्रतुम्।
प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च।।मनुस्मृति १/३४.३५।।

मनु के इस प्राजापत्य-परिगणन में 'मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु' और 'नारद' ये दश महर्षिगण ही 'प्रजापति' के रूप में गिनाये गये हैं। इनमें कहीं भी 'महावीर' का नाम नहीं है, यह सुनिश्चित है। फिर भी उसे 'प्रजापति' बताना दुराग्रह ही है। अर्थ के निर्धारक 'संयोग' आदि अनेक कारकों में एक कारक 'प्रकरण' भी है। अत: 'प्रकरण' के अनुसार ही पद-पदार्थ का निर्धारण होता है। इसके विपर्यास में विपर्यय अवश्यम्भावी है। जिस 'महावीर' को 'प्रजापति मान कर उसकी प्रतिमा के निर्माण का प्रश्न यहाँ उठाया गया है, वह 'महावीर' किसी भी तरह से 'प्रजापति' सिद्ध नहीं होता है। हाँ! वहाँ 'यज्ञ' की ही 'प्रजापति' यह अभिख्या अवश्य ही अभिप्रेत है। जैसाकि 'शतपथ ब्राह्मण' का स्पष्ट उल्लेख है- ''**प्रजापतिर्वा एष यज्ञो भवति**'' (१४/१/१/१८)। इसमें 'महावीर' नाम के एक मिट्टी के बने हुए 'घृतपात्र' का तो उल्लेख है, जोकि यज्ञ में प्रयुक्त होता है किन्तु किसी दीर्घपुच्छ वानराकृतिक 'महावीर' का नहीं। तथाऽपि ''**सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मौर्ख्यस्य नास्त्यौषधम्**'' इस हरिभणिति के अनुसार हठी व्यक्ति इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार नहीं कर पाता है और वह इतस्तत: छटपटाते हुए बेचैन होकर स्व स्वीकृत मत की पुष्टि हेतु यजुर्वेद संहिता के एक मन्त्र को ढूँढकर ले आता है- ''**देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्या:। मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे**'' (यजु. ३७/३) और कहता है कि इस मन्त्र में अवश्य ही 'महावीर' की मूर्ति बनाने के लिए जल तथा 'मिट्टी' को ग्रहण करने का वर्णन है, परन्तु विचार और चिन्तन-मनन करने के बाद प्रतीत होता है कि दुराग्रही का यह कथन भी अविचारित-रमणीय है। इसका कारण यही है कि '**कुशे काशावलम्बन न्याय**' से वह जिस वेद का प्रामाण्य स्व पक्ष में प्रस्तुत करना चाहता है, वह तो पूर्व में ही प्रजापति-परमात्मा को 'अकायम्' (यजु. ४०/८) बतलाते हुए '**न तस्य प्रतिमाऽअस्ति**' (यजु. ३२/३) कहकर उसकी प्रतिमा का सर्वथा ही निषेध कर चुका है। साथ ही मूर्तिपूजकों को '**अन्धन्तम: प्रविशन्ति:**' (यजु. पृष्ठ ४०.९) के सदुपदेश के द्वारा वह घोर-घने अन्धेरे अर्थात् नरक में पड़ने वाले भी बतला चुका है। अत: वेद में मूर्तिपूजार्थ 'मूर्तिनिर्माण' की विधि को ढूँढना ठीक वैसा ही है जैसे कोई ज्वालमाला-

कलाप रूप दन्दत्यनाम-भ्रारुट्र-भाड़ में शीतलता को ढूँढे। इसी को ब्रज में ''घर की मारी वन गयी और वन में लागी आग'' के रूप में कहा जाता है। इन दिवान्ध कौशिकों को पता ही नहीं कि वेद में मूर्तिपूजा का कहीं नामोनिशान भी नहीं है। ये वो पाखण्डी नरपिशाच हैं, जो कि 'गौ' को **''माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा दित्यानाममृतस्य नाभिः''** (ऋक्. ८/१०१/१५) स्वीकार करके भी उसको मार करके अतिथि को मधुपर्क में मांस-भोजन परोसने की आज्ञा देते हैं (द्र. पारस्कर गृह्य सूत्र कां. ९/३/२७)। जहाँ तक इनके द्वारा प्रस्तुत किये गये- **''देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखायत्वा मखस्यत्वाशीर्ष्णे''** इस मन्त्र से 'महावीर' की मूर्ति बनाने के लिए जल और 'मृदा' के आहरण की बात है, वहाँ यह वेद्य है कि उक्त मन्त्र का ऐसा अभिप्राय नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ इस प्रकार है- **'देवी'= उत्तम गुणों से युक्त 'द्यावा पृथिवी'= 'प्रकाश' और 'भूमि' के तुल्य वर्तमान 'अध्यापिका' और 'उपदेशिका' स्त्रियो! 'अथ'= इस समय 'पृथिव्याः'=पृथिवी के बीच, 'देवयजने'= विद्वानों के यज्ञस्थल में, वाम= तुम दोनों के, 'मखस्य'=यज्ञ के, 'शीर्ष्णे'= उत्तम अवयव को मैं राध्यासम्=सम्यक् सिद्ध करूँ। मखस्य-यज्ञ के, शीर्ष्णे=उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये 'त्वा'= तुझको और 'मखाय'= यज्ञ के लिए 'त्वा'= तुझको सिद्ध करूँ। इस मन्त्र में 'वाचक-लुप्तोपमा'** अलङ्कार है। तदनुसार इसका आशय यह है कि हे मनुष्यो! इस जगत् में जैसे सूर्य, भूमि, उत्तर अवयव के तुल्य वर्तमान हैं, वैसे आप लोग सबसे उत्तम वर्तो=व्यवहार करो। जिससे सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे। पाठकगण ध्यान दें कि इस असली-अर्थ वाले उपर्युक्त वेदमन्त्र में 'महावीर' की मूर्ति के निर्माण के विषय में कोई भी चर्चा नहीं की गयी है। अतः हठी जनों का यह अकाण्ड ताण्डव ही है। इतना सुस्पष्ट होने के बाद भी हठी तो हठी ही है, वह चुप नहीं रहता है और पुनः कहने लगता है- 'आपका यह मन्त्रार्थ ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर 'कात्यायन-श्रौतसूत्र' में स्पष्ट ही लिखा गया है **'मृदमादत्ते पिण्डवद् देवी द्यावापृथिवीति'** (कां. २५/१/४)।''द्यावापृथिवी'' इस मन्त्र से जलमिश्रित-मृत्पिण्ड को उठावे। यहाँ पर हमारा निवेदन है कि मूल मन्त्र-पाठ से विरुद्ध कोई भी भाष्य या व्याख्या किंवा विनियोग कथमपि स्वीकार्य नहीं हो सकता है। इसका मुख्य कारण 'मूलवेदमन्त्र पाठ का स्वतः प्रमाण होना है।''कात्यायन श्रौतसूत्र' और 'शतपथ ब्राह्मण' जैसे पौरुषेय ग्रन्थ 'परतः प्रमाण' हैं। इनमें जो भी मूल वेदमन्त्र के विरुद्ध लेख प्राप्त होता है, वह इसी कारण अप्रामाणिक और मनमानी कल्पनामात्र होने से न केवल हेय ही है प्रत्युत वह त्याज्य भी है। इसी युक्ति से- शतपथब्राह्मण का यह लेख भी **''अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति''** (शतपथ ब्रा. १४/१/२/९) हेय है। तथाऽपि **'वादितोषन्यायेन'** इसे मान भी लिया जाये तो भी इसमें यह जिज्ञासा तो निश्चित ही विजृम्भित रहेगी कि इस शतपथ ब्रा. के पाठ में 'मूर्ति' शब्द कहाँ है? इसका सम्पूर्ण पाठ निम्नाङ्कित रूप में अवलोकनीय है- **''अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्र दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवी द्यावापृथिवीति। यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्स इमे द्यावापृथिवी अगच्छद्यन्मृदियं तद्यद् आपोऽसौ तन्मृदश्चापां च महावीराः कृता भवन्ति- तेनैवैनमेतद्रसेन समर्धयति कृत्स्नं करोति तस्माद् आहं देवी द्यावापृथिवी' इति मखस्य वामघ शिरो राध्यासमिति। यज्ञो वै मखो, यज्ञस्य वामद्यशिरो राध्यासमित्येवैतदाह-देवयजने पृथिव्या इति। देवयजने हि पृथिव्यै सम्भरति मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्ण इति। यज्ञो वै मखो, यज्ञाय त्वा, यज्ञस्य त्वा शीर्ष्ण इत्यवैतदाह''** (श. ब्रा. १४/१/२/९) पाठकगण यहाँ तटस्थभाव से अवलोकन करें। इस पाठ में ''महावीराः कृता भवन्ति'' यह पाठ तो अवश्य है। जिसका अभिप्राय 'महावीर' नामक 'यज्ञ-पात्र' बनाये जाते हैं, यह है किन्तु शतपथ ब्रा. के इस सम्पूर्ण पाठ में 'मूर्ति' शब्द का कोई भी उल्लेख नहीं है। फिर भी दुराग्रह ग्रहियों ने इसे अपनी ओर से मिला दिया है। जहाँ तक शतपथकार की इस मन्त्रव्याख्या की बात है, वह उनकी मूलमन्त्र के आशय से विरुद्ध एक असत्कल्पना है, जोकि अनुचित ही मानी जायेगी। इस विशद-वर्णन से यह तो स्पष्ट ही है कि दुराग्रही सनातनी प्रजापति=ईश्वर की मूर्ति और उसकी पूजा को 'वेद' से सिद्ध करने में असफल रहा है।

शेष अगले अङ्क में- **एटा (उ.प्र.)**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ अप्रैल २०२० तक)

१. आर्य चेरिटेबल ट्रस्ट, राँची २. श्रीमती विमल कपूर, फरीदाबाद ३. श्री परमानन्द पटेल, झूंसी, प्रयागराज ४. श्री राजेन्द्रसिंह, नई दिल्ली ५. मन्त्री आर्यसमाज, बीकानेर ६. मै. मुरलीधर दीनदयाल, अजमेर ७. श्रीमती राजबाला, मुजफ्फरनगर ८. श्रीमती प्रकाशवती राठी, सोनीपत ९. श्री ईश्वरलाल ठन्ना, उज्जैन १०. श्रीमती दीप्ति मल्होत्रा, नईदिल्ली ११. मै. स्वास्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती १२. श्री सूर्यप्रकाश आर्य, विदिशा १३. श्रीमती अनिता एवं श्री विनायक, बसवकल्याण १४. श्री इन्द्रजित्देव, यमुनानगर १५. श्री हेमन्त शारदा, अजमेर १६. श्री जे. एस. सामन्त, हलद्वानी नैनीताल १७. जस्टिस प्रीतमपालसिंह, चण्डीगढ़ १८. श्री सुरेन्द्रमोहन विकल, लुधियाना १९. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर २०. मै. हिन्द पेपर मार्ट, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ से १५ अप्रैल २०२० तक)

१. श्री सुरेन्द्र कुमार कोहली, दिल्ली २. श्री संजय गुप्ता, अमेरिका ३. श्री अरुण गुप्ता, नोएडा ४. कै. चन्द्रप्रकाश त्यागी, रुड़की ५. श्री उदयचन्द पटेल, बैंगलुरु ६. श्री अतुल कुमार, हरसोली, अलवर ७. श्री कमलेश पुरोहित, अजमेर ८. श्रीमती चाँद देवी, अजमेर ९. श्री श्रवण कुमार वर्मा, अजमेर १०. श्री राकेश भार्गव, गुड़गाँव ११. श्री भीमसिंह गहलोत, अजमेर १२. श्री देवेन्द्र गहलोत १३. श्री किशनसिंह गहलोत, अजमेर १४. श्री कँवरसिंह गहलोत, अजमेर १५. श्रीमती पार्वती, अजमेर १६. श्री हरीश पण्डित, अजमेर १७. श्री जितेन्द्र गढ़वाल, अजमेर १८. श्रीमती सीमा पालड़िया, अजमेर १९. श्री राजकुमार चौहान, अजमेर २०. श्रीमती पूजा गहलोत, अजमेर २१. श्रीमती भावना गहलोत, अजमेर २२. श्री इन्द्रसिंह राठौड़, अजमेर २३. श्री सुरेन्द्र चौहान, अजमेर २४. श्री राजसिंह गहलोत, अजमेर २५. श्री प्रणव सैनी, जयपुर २६. डॉ. आशुतोष पारीक, अजमेर २७. श्री अंकुर व सुर्वचा भार्गव, मुम्बई २९. श्री भास्करसेन गुप्ता, अमेरिका ३०. श्रीमती सुयशा, अमेरिका, ३१. श्रीमती सरिता बत्रा, दिल्ली ३२. डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, अजमेर ३३. श्री अखिलेश सारस्वत, अजमेर ३४. श्री अग्निवेश, ऋषिउद्यान, अजमेर ३५. डॉ. बद्रीप्रसाद पञ्चोली, अजमेर।

सभा के अन्य प्रकल्पों हेतु दान

१. सुश्री सुनीता तंवर, अजमेर २. श्री मुरारीलाल गुप्ता, बिलासपुर ३. डॉ. राजपाल, बड़ौत ४. डॉ. ब्रह्मदेव, कनखल ५. श्री तपेन्द्र कुमार, जयपुर ६. डॉ. जगदेव विद्यालंकार, रोहतक ७. श्री अग्निवेश व श्रीमती कंचन आर्य, ऋषिद्यान, अजमेर ८. श्री रामकपूर, खुबरु, सोनीपत ९. श्री हरिसिंह कुशवाह, कोटा १०. श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री, पलवल ११. श्री आर. सत्यनारायण रेड्डी, हैदराबाद १२. आर्यसमाज, साकेत, नई दिल्ली १३. श्रीमती सन्तोष कुमारी, नोएडा १४. श्री भीमसेन प्रभाकर, चरखी दादरी १५. अत्तार दीवान ट्रस्ट, मुरादाबाद १६. डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी', अजमेर १७. डॉ. राजपाल सिंह, बड़ौत १८. श्री सौजन्य गोयल, मुजफ्फरनगर १९. श्री अभिषेक एवं श्रीमती पीयूष, अजमेर २०. श्री

चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद २१. आर्यसमाज मॉडलटाउन, यमुनानगर २२. श्रीमती सुदेश चढ्ढा, यमुनानगर २३. श्री राजवीर सिंह, मुम्बई २४. श्रीमती अनिता कोठारी, जयपुर २५. श्री सज्जनसिंह कोठारी, जयपुर २६. श्री बलवन्तसिंह दहिया, बादशाहपुर, गुड़गाँव २७. श्री सञ्जय गुप्ता, अमेरिका २८. श्री चेतनप्रकाश आर्य, हिसार २९. श्री दीनानाथ भाटिया, हिसार ३०. श्री नन्दलाल, छीपाबड़ौद ३१. श्री विजय कुमार आर्य, कीरतपुर, बिजनौर ३२. श्री शत्रुघ्न आर्य, रांची ३३. आर्यसमाज, म.द. मार्ग, बीकानेर ३४. श्रीमती प्रकाशवती राठी, सोनीपत ३४. श्री सुधीर वशिष्ठ, पर्थ, आस्ट्रेलिया ३५. श्री विपिन कुमार, दिल्ली ३६. आर्यसमाज, तिलकनगर, रोहतक ३७. डॉ. खजानसिंह गुलिया, रोहतक ३८. श्री रणवीर मान, रोहतक ३९. श्री सुखवीर दहिया, रोहतक ४०. श्री कंवर सिंह गुलिया, रोहतक ४१. डॉ. मोहनलाल अग्रवाल, लखनऊ ४२. श्री सुरेन्द्रपाल चौधरी, अजमेर ४३. डॉ. मुकेश एवं डॉ. मधु आर्य, बीकानेर।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**

देशभक्त दयानन्द

कन्हैयालाल आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती गुणों के भण्डार थे। वे परम योगी, विधवा और अनाथों के सहायक, सिद्धहस्त लेखक, महान् वेदज्ञ, शास्त्रार्थ महारथी, समाज-सुधारक, परम गोभक्त, कवि व समालोचक, स्वदेश-प्रेमी एवं राष्ट्रभक्त, अछूतोद्धारक, वैदिक संस्कृति और सभ्यता के उपासक और प्रशंसक एवं नारी जाति के परम हितैषी थे।

महर्षि दयानन्द को भिन्न-भिन्न विद्वानों, लेखकों, विचारकों और चिन्तकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखा है। फ्रैन्च लेखक रोम्या रोलां ने उन्हें मानव मात्र के लिए वेदों का द्वार खोलने वाला बताया। कर्नल अल्कॉट ने उन्हें उच्चकोटि का योगी ठहराया। योगी अरविन्द जी का कहना है कि दयानन्द विशेषणातीत हैं। उन्होंने उन्हें पर्वतचोटियों में सर्वोच्च चोटी के समान वेद भाष्यकार के रूप में देखा। अनन्तशयन आयंगर ने उन्हें राष्ट्रपितामह कहा। मैक्समूलर ने उनके वेद ज्ञान की हृदय खोलकर प्रशंसा की। देवेन्द्र मुखोपाध्याय ने उन्हें आदर्श ब्रह्मचारी ही नहीं, अपितु वैदिक संस्कृति का उन्नायक और मूर्त्तिपूजा का प्रबल विरोधी कहा। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैमसे मैक्डॉनल्ड ने उन्हें एक वीर योद्धा एवं मिशनरी की संज्ञा दी।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने समाज-सुधार के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया, किन्तु यह कार्य तो अपने-अपने स्तर पर कबीर, नानक, राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन आदि अनेक पुरुषों ने भी किया था। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बड़ा काम किया। देश की स्वाधीनता के लिए न जाने कितनों ने अपने बलिदान किये। गीता, उपनिषद्, व्याकरण की व्याख्या एवं भाष्यों के अनेक विद्वानों ने चिरस्मरणीय कार्य किये, परन्तु इन सब कार्यों से ऋषि दयानन्द की पहचान नहीं हो सकती। ऋषि दयानन्द की पहचान पिछले पाँच हजार वर्षों में किसी काम से हो सकती है तो वह उनके कथन, ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।'' से हो सकती है। वेद के प्रति यह दृष्टि ही, मेरी दृष्टि में दयानन्द की विलक्षणता है और यही उनकी पहचान है।

एक ओर तो स्वामी दयानन्द जी गोरक्षा और हिन्दी के लिए सार्वजनिक आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे और दूसरी ओर अपने चिन्तन, लेखनी और वाणी के द्वारा स्वाधीनता के आन्दोलन को सहयोग करने में अग्रणी थे। भारतीयों को भ्रमित करने के विचार से आर्य-द्रविड़ जातियों के सिद्धान्त की कल्पना रॉयल एशियाटिक सोसायटी के बन्द कमरे में ९ अप्रैल १८६६ की सभा में की गई थी। उसी के अनुसार प्राथमिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की पुस्तकों में यह पढ़ाया जाने लगा कि आर्यों ने यहाँ के आदिवासियों को परास्त कर इस देश पर बलात् अधिकार किया। इसी आधार पर आर्यों को आक्रामक घोषित किया जाने लगा। इसी आधार पर ०४-०९-१९७७ को संसद में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य फ्रेंक एन्थोनी ने माँग की- ''संस्कृत को संविधान के आठवें परिशिष्ट से हटा देना चाहिये, क्योंकि यह विदेशी भाषा है, जिसे विदेशी आक्रमणकारी आर्य इस देश में लाये।'' इस प्रकार का दुष्प्रचार इस देश के मूल निवासी आर्यों के विरुद्ध किया जा रहा था। ऐसे समय में ऋषि दयानन्द जी के आगमन ने आर्य जाति में नवजीवन का संचार कर दिया।

इसी प्रकार सन् १९७८ में भारत ने अपना पहला उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़ा था। उसका नाम भारत के प्राचीन वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर रखा गया था तभी द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK) के प्रतिनिधि लक्ष्मणन ने इस नाम पर आपत्ति करते हुए राज्यसभा में माँग की कि आर्यभट्ट नाम के विदेशी होने के कारण उस के स्थान पर भारतीय नाम होना चाहिये।

ऋषि दयानन्द जी वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पाश्चात्यों के इस कूटनीतिक षड्यन्त्र को समझा और उसके विरुद्ध उद्घोष किया-'किसी संस्कृत ग्रन्थ व इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों से लड़कर विजयी होकर उन्हें निकालकर

इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश में आकर बसे थे। इससे पूर्व इस देश का कोई नाम भी नहीं था और न कोई आर्यों से पूर्व इस देश में बसते थे।' आर्यों ने ही इस देश को बसाया और 'आर्यावर्त' नाम दिया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द जी ने ही हमें इस देश को अपना देश कहने और उस पर राज्य करने का अपना जन्मसिद्ध अधिकार जताने का अधिकार प्रदान किया। इसलिए सरदार पटेल का यह कहना सर्वथा युक्तिसङ्गत है कि स्वाधीनता आन्दोलन की नींव वास्तव में स्वामी दयानन्द ने ही रखी थी।

स्वराष्ट्र, स्वभाषा, स्वभूषा, स्वसंस्कृति, स्वतन्त्रता के प्रबलतम पक्षधर महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे दिव्य राष्ट्रपुरुष थे जिनका सम्पूर्ण चिन्तन और कार्य जहाँ आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत था वहीं राष्ट्र उनके लिए प्रथम था। यह तथ्य स्पष्ट है कि भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए एकदम स्पष्ट और बुलन्द शब्दों में आवाज़ उठानेवालों में महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राष्ट्र को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए अपने जीवन को आहूत कर दिया। वर्तमान में सच्चे अर्थों में महर्षि के अनुयायी राष्ट्र के लिए बिना किसी फलितार्थ की चाहना के कार्य कर रहे हैं। महर्षि की इस विचारधारा की प्रासङ्गिकता सदैव बनी रहेगी।

सत्यार्थप्रकाश से भी पहले सन् १८७४ में ऋषि दयानन्द जी ने 'आर्याभिविनय' की रचना की थी। इसमें उन्होंने लिखा था 'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी शासन न करें। हम कभी पराधीन न हों।' अंग्रेजों के उस दमनकारी राज्य में क्या कोई और समाज-सुधारक इस प्रकार की बात कहने का साहस कर सकता था। विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह की कितनी भयंकर ज्वाला धधक रही होगी उस व्यक्ति के हृदय में, जिसने अपने अनुयायियों के लिए प्रार्थना-पुस्तक में भी उन्हें प्रतिदिन विदेशी शासन से मुक्त होने की प्रार्थना करने का निर्देश किया था।

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने लिखा था, ''कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, दया और न्याय के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।''

कितना प्रखर था ऋषि दयानन्द का तेज और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए कितनी प्रबल थी उनकी भावना, यह जानने के लिए १९४४ में पंचम आर्य महासम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के इस उद्‌बोधन को देखना होगा।

''Could there be a bold or declaration of war against foreign domination. अर्थात् विदेशी शासन के विरुद्ध क्या इससे अधिक निर्भीक घोषणा हो सकती थी।'' यह एक मेधावी और जुझारू योद्धा की वाणी थी।

सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में हीनभावना से ग्रस्त, कोई व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र से ऊपर उठने की सोच भी नहीं सकता। इसलिए ऋषि दयानन्द ने सबसे पहले यह लिखा-

''यह आर्यावर्त ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है, इसलिए इस भूमि का नाम 'स्वर्ण-भूमि' है, क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी दरिद्र-विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते थे। सृष्टि के आरम्भ से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व पर्यन्त आर्यों का सार्वभौमिक चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा होते थे।''

''यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्यावर्त देश से ही प्रचारित हुए हैं। देखो कि जैकालियट नाम का एक फ्रांसीसी अपनी पुस्तक 'ला बाइबिल दांस ला इन्दे (बाइबल इन इण्डिया) में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त देश है और सब विद्या और मत इसी देश से फैले हैं'' और परमात्मा से प्रार्थना है कि ''हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्यावर्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही अब हमारे देश में कीजिये।''

सन् १९११ की जनसंख्या के अध्यक्ष मिस्टर ब्लन्ट ने आर्यसमाज पर टिप्पणी करते हुए लिखा था:- The Arya Samaj doctrine has a patriotic ride. The Arya doctrine and Arya education alike sing the glories of ancient India and by so doing arouse a feeling of national pride in its disiciples. आर्यसमाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरणा है। आर्यसिद्धान्त और आर्य-शिक्षा समानरूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायियों में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना को जगाते हैं।

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पहले तक मुसलमान और ईसाइयों को तो धर्म-परिवर्तन की छूट थी, किन्तु हिन्दुओं को अपने घर लौटने की आज्ञा नहीं थी, इसलिए हिन्दुत्व की निन्दा करने वाले निश्चिन्त थे कि हिन्दू अपना सुधार भले ही करता हो, परन्तु हमारी निन्दा का साहस उसमें नहीं होगा, परन्तु इस जुझारू संन्यासी ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। यही नहीं, जो बात राजा राममोहन राय तथा महादेव गोविन्द रानाडे के ध्यान में नहीं आई, उस बात को लेकर ऋषि दयानन्द के शिष्य आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा की कि धर्मच्युत हिन्दू प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में वापिस आ सकता है। इतना ही नहीं, अहिन्दू भी, यदि चाहें तो हिन्दू धर्म में प्रवेश कर सकता है। महर्षि दयानन्द जी इससे आगे बढ़ जाते हैं और आदेश की भाषा में कहते हैं, ''मनुष्य उसी को कहना जो अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मसभाओं की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी का नाश सदैव किया करे। इस मनुष्यरूपी धर्म को कभी न छोड़े।''

स्वामी दयानन्द जी ने आक्रामकता का सूत्रपात किया, क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। जब उनके परम हितैषी और प्रशंसक सर सय्यद अहमद खाँ ने हिन्दी को 'गँवारू भाषा' कहकर उसका उपहास किया तो स्वामी दयानन्द जी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, और बालकृष्ण भट्ट जैसे दिग्गजों की उपस्थिति में उर्दू को 'वारविलासिनी' (वेश्या) और हिन्दी को 'कुलकामिनी' बताया।

सन् १९४९ में आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली द्वारा प्रथम ऋषि निर्वाण उत्सव की अध्यक्षता करते हुए केन्द्रीय मन्त्री श्री नरहरि विष्णु गाडगिल जी ने कहा था, ''यदि यह देश ऋषि दयानन्द के मार्ग पर चला होता तो कश्मीर पाकिस्तान में न जाता'' श्री गाडगिल जी के इस वक्तव्य को मुसलमान नेताओं ने बहुत उछाला और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के पास पहुँचे और शिकायत की कि आपका मन्त्री शुद्धि का प्रचार करता है, अगले वर्ष १९५० में मुख्य वक्ता के रूप में सरदार वल्लभभाई पटेल जी ने कहा ''यदि हमने ऋषि दयानन्द की बात मानी होती तो आज कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में लटका हुआ न होता।'' सरदार पटेल के अनुसार यह सब ऋषि दयानन्द जी की बात न मानने के कारण हुआ। ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में लिखा है ''मन्त्री स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न होने चाहियें, वे जिनकी जड़ें अपने देश की मिट्टी में हों, जो विदेशों से आयातित न हो और जिनकी आस्था, धर्म, संस्कृति, सभ्यता तथा परम्पराओं में हो।''

'आर्याभिविनय' के दूसरे अध्याय के पहले मन्त्र में ऋषि दयानन्द जी ने लिखा-

''हे मेरे प्रभो! आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हो। एक-दूसरे का दु:ख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त निर्वैर, प्रीतिमान्, पाखण्डरहित करें।'' पुन: ३१वें मन्त्र में ऋषि दयानन्द जी परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ''हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति विजय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत पुष्ट कर। हे प्रभो! हम सब देशभक्त बनें, किसी बात के लिए विदेशों पर निर्भर न हों। महर्षि दयानन्द के इन क्रान्तिकारी विचारों ने युवकों के हृदयों में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित कर दी और देश के अनेकों युवक राष्ट्रहित में बलिदान हेतु तत्पर हो गये। इनमें सबसे पूर्व श्री श्यामकृष्ण जी वर्मा जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। ऋषि दयानन्द जी ने उन्हें परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया।

आर्याभिविनय से प्रभावित होकर श्यामजी ने १९०५ में रियासत के प्रधानमन्त्री पद से त्याग-पत्र दे दिया और सारा जीवन एक आवारा मसीहा के रूप में व्यतीत किया।

क्रान्तिकारियों के गुरु और भारत में ब्रिटिश शासन की दृष्टि में आतंकवाद के प्रतीक चन्द्रशेखर आजाद जब तक आर्याभिविनय के कम से कम एक मन्त्र का पाठ नहीं कर लेते थे तब तक रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं तोड़ते थे। 'मेरा रंग दे बसन्ती चोला' जैसे गीत के गायक रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी आत्मकथा में अगले जन्मों में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के आदर्श की पूर्ति का संकल्प प्रकट किया। स्वाधीनता संग्राम में आर्यों के लिए ऋषि दयानन्द जी के ग्रन्थ अपूर्व शक्ति व प्रेरणा का स्रोत रहे हैं। संसार के महापुरुषों में महर्षि दयानन्द की शान निराली है। अन्य महापुरुषों में किसी में एक गुण तो किसी में दूसरा-

परन्तु कोई विद्वान् है तो योगी नहीं,
कोई योगी है तो सुधारक नहीं।
कोई सुधारक है तो निर्भीक नहीं,
कोई निर्भीक है तो ब्रह्मचारी नहीं।
कोई ब्रह्मचारी है तो संन्यासी नहीं,
कोई संन्यासी है तो श्रेष्ठ वक्ता नहीं।
कोई श्रेष्ठ वक्ता है, तो लेखक नहीं,
कोई लेखक है तो सदाचारी नहीं।
कोई सदाचारी है, तो परोपकारी नहीं,
कोई परोपकारी है तो कर्मठ नहीं।
कोई कर्मठ है, तो त्यागी नहीं,
कोई त्यागी है तो देशभक्त नहीं।
कोई देशभक्त है, तो वेदभक्त नहीं,
कोई वेदभक्त है तो उदार नहीं।
कोई उदार है तो शुद्ध आहार नहीं,
कोई शुद्धाहारी है तो योद्धा नहीं।
कोई योद्धा है तो सरल और दयालु नहीं,
कोई सरल और दयालु है तो संयमी नहीं।

परन्तु आप यदि सभी गुण एक ही व्यक्ति में देखना चाहते हैं तो आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द में देख सकते हैं। जो आचार्यों के आचार्य, परिव्राजक सम्राट, वेदाविद्याधिपति, शास्त्रनिष्णात, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, व्याकरण महोदधि, ब्राह्मण कुल कमल भास्कर, शास्त्रार्थ महारथी, दिग्गज मेधावी, अद्‌भुत, अलौकिक, तार्किक, मुक्त आत्मा एवम् अनुकरणीय है।

आइये! इस लेख को पढ़ने के पश्चात् निश्चय करें कि उनकी स्थापित की हुई आर्यसमाज के यदि आप सदस्य नहीं हैं तो सदस्य बनेंगे, यदि सदस्य हैं तो वेद के प्रचार हेतु अपने दैनिक जीवन में कुछ न कुछ समय अवश्य निकालेंगे। ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र को स्वयं पढ़ेंगे और उनके ग्रन्थों विशेषकर सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय नामक ग्रन्थों का स्वाध्याय करके अपने जीवन को सार्थक करेंगे। **मन्त्री- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

शोक समाचार

१. आर्यसमाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक **श्री मामचन्द आर्य पथिक**-इकबालपुर वालों का देहान्त १ जुलाई २०२० को शाकुम्बरी सोसायटी दिल्ली रोड रुड़की में उनके छोटे सुपुत्र श्री अरविन्द कुमार के निवास स्थान पर हो गया। अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया।

२. आर्यसमाज के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, संन्यासी और अनेक पुस्तकों के लेखक, उधमपुर, जम्मू कश्मीर और सुन्दरनगर (मण्डी) हिमाचल प्रदेश स्थित अनेक वैदिक आश्रमों के संचालक व संस्थापक, **महात्मा चैतन्यमुनि जी** (हिमाचल प्रदेश) का निधन अचानक दिल का दौरा पड़ने से २६ जून २०२० शुक्रवार की दोपहर को हो गया। अन्तिम संस्कार मंडी हिमाचल में ही किया गया।

३. स्व. महेन्द्रसिंह यादव-कमांडेन्ट केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सी.एल.एस.एफ.) रेवाड़ी, हरियाणा का गत २४ मई को ६३ वर्ष की आयु में हृदयगति रुकने से देहान्त हो गया। उनके एक पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। पुत्र सुनील यादव ने आर्यसमाज पद्धति से (वैदिक मन्त्रोच्चारण साध्वी पुष्पा शास्त्री द्वारा) अपने ग्राम गिन्दोरवर में अन्तिम संस्कार किया।

परोपकारिणी सभा की ओर से दिवंगतात्माओं को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

''आर्यसमाज के नियम''
नियम-१ (आस्तिकता सम्बन्धी नियम)

नवीन मिश्र

''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।''

आर्यसमाज के नियम सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। आर्यसमाज का प्रथम नियम ऋषि दयानन्द की आस्तिकता को दर्शाता है। महर्षि दयानन्द ने जिस समय घर छोड़ा था, उस समय वह दो प्रमुख उद्देश्यों को लेकर घर से निकले थे- एक सच्चे ईश्वर की खोज, दूसरा जीवन-मृत्यु के रहस्य को जानना। इसके लिये उन्होंने पूरे देश में जगह-जगह घूमकर देखा, तरह-तरह के साधुओं, सन्तों, महन्तों, योगियों से मिले, दुर्गम यात्राएँ कीं, बर्फ की नदियाँ पार कीं। खतरनाक जानवरों सिंहों-भालुओं का सामना किया। अन्त में उन्हें गुरु विरजानन्द के माध्यम से वेदों (ईश्वरीय ज्ञान) का वह खजाना मिल गया जिसमें उनके सभी प्रश्नों का उत्तर था।

आज समस्त संसार के पतन का मूल कारण वेदों (ईश्वरीय विधान) से दूर चले जाना ही है। जिस समय ऋषि दयानन्द सत्य की खोज में घूमते हरिद्वार पहुँचते हैं, वहाँ उनकी भेंट स्वामी पूर्णानन्द नाम के संन्यासी से होती है जो कि स्वामी विरजानन्द के संन्यास गुरु थे। स्वामी पूर्णानन्द की अवस्था उस समय लगभग १०८ वर्ष की थी। इस कारण उन्होंने पढ़ाने में असमर्थता व्यक्त करते हुए अपने शिष्य स्वामी विरजानन्द से पढ़ने के लिए निर्देशित किया था और ऋषि दयानन्द सम्वत् १९१७ (सन् १८६०ई.) में गुरु विरजानन्द के सम्मुख उपस्थित हुये थे। यह वृतान्त लिखना इसलिये आवश्यक था, क्योंकि महर्षि दयानन्द का गुरु विरजानन्द से मिलना, गुरु-शिष्य एवं इस संसार के लिये एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। महर्षि दयानन्द को आर्ष और अनार्ष की कुञ्जी गुरु विरजानन्द से ही मिली थी।

गुरुवर विरजानन्द कहते थे कि केवल आर्ष ग्रन्थ ही रहने चाहिये। अनार्ष ग्रन्थ नष्ट होने चाहिये। गुरु विरजानन्द का मानना था कि आज जो संसार में अन्धकार है उसका कारण है आर्ष ग्रन्थों (ऋषि प्रणीत) का प्रचार न होना और उनकी जगह अनार्ष (मनुष्यकृत) ग्रन्थों का प्रचार होना। गुरु विरजानन्द की अनार्ष ग्रन्थों के प्रति इतनी अश्रद्धा थी कि उन्होंने ऋषि दयानन्द को पढ़ाने से पूर्व उनके समस्त अनार्ष ग्रन्थ यमुना नदी में फिंकवा दिये थे। जब तक इस देश में आर्ष ग्रन्थों का प्रचार रहा यह देश सोने की चिड़िया कहा जाता था। सभी मनुष्य आस्तिक होते थे। आर्यसमाज के प्रथम नियम का आधार आस्तिकता ही है। आर्यसमाज के प्रथम नियम में आता है- सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। अब विचारना चाहिये कि सब सत्य विद्या क्या है? इसका उत्तर आर्यसमाज के तीसरे नियम में ऋषि दयानन्द के शब्दों में मिलता है कि ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।'' अर्थात् सत्य विद्या क्या है-वेद।

अब वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है ऐसा ऋषि ने क्यों कहा? इसको जानेंगे, जब ऋषि दयानन्द वेदों का भाष्य करने लगे तो उस समय उन्होंने भूमिका के रूप में ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका लिखी जिसमें उन्होंने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि वेद परमात्मा की वाणी है जैसे -सृष्टि के आरम्भ में जब परमात्मा ने पूर्व कल्प के कर्म उनके संस्कारों के अनुसार समस्त जीवों के लिए सृष्टि की रचना की तो मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को स्वाभाविक ज्ञान दिया जिससे उनका काम स्वाभाविक रूप से चलता रहता है किन्तु मनुष्य को बुद्धि विशेष मिली हुई है। इसलिये मनुष्यों के लिए सृष्टि के आरम्भ में नैमित्तिक ज्ञान आवश्यक था। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों के हृदय में परमात्मा ने प्रकाशित किया था। वे चार पवित्र आत्मा ऋषि थे- अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा। वेदों में जो ज्ञान है वह सभी के लिए कल्याणकारी है, निर्भ्रान्त है एवं सृष्टिक्रम के अनुसार है। इस प्रकार प्राचीन समय में सभी मनुष्य वेद मन्त्रों के अनुसार जीवनयापन करते थे। अर्थात् उस समय सभी मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन करते थे। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने समस्त सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर को माना है। (इस पर विशेष जानकारी आर्यसमाज के तीसरे नियम की व्याख्या में लिखी जायेगी।)

अब पदार्थ-विद्या पर विचार करते हैं वैदिक परम्परा और ऋषि दयानन्द के अनुसार तीन पदार्थ अनादि हैं- ईश्वर, जीव और प्रकृति। इनसे सम्बन्धित विद्या ही पदार्थ-विद्या कही जायेगी। इसमें आध्यात्मिक विद्या के अलावा सृष्टि-विद्या भी आ जाती है एवं आजकल की समस्त भौतिक विद्या भी जा जाएगी। महर्षि कहते हैं कि इन समस्त विद्याओं के लिए समस्त तारों, ग्रहों, उपग्रहों में जो गुरुत्वाकर्षण का नियम है जिसके विषय में कहा जाता है कि गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज न्यूटन ने की थी, अब प्रश्न है कि गुरुत्वाकर्षण का ये नियम किसने और क्यों तथा कब बनाया? इस उत्तर है परमेश्वर ने बनाया। प्रत्येक सृष्टि में बनाया तथा सृष्टि को व्यवस्थित चलाने के लिए बनाया। अत: हम कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण का आदि मूल परमेश्वर है इसी प्रकार गणित के सिद्धान्तों पर विचार कर सकते हैं- २+३=५ होते हैं ये नियम किसने बनाया, कब बनाया क्यों बनाया? इसका उत्तर है परमेश्वर ने बनाया, प्रत्येक सृष्टि में बनाया अर्थात् सदैव से है और सृष्टि में परस्पर व्यवहार के लिए बनाया अर्थात् समस्त गणितीय नियमों का आदि मूल परमेश्वर है।

अब जीव सम्बन्धी कुछ नियमों की चर्चा करते हैं जब परमेश्वर जीवों को मनुष्य योनि में कर्मानुसार भेजता है तो पाप से बचाकर उत्तम कर्मों में लगाने के लिए आत्मा में दो प्रकार की प्रेरणाएँ सदैव देता रहता है। जब कोई व्यक्ति पाप कर्म की ओर प्रवृत्त होता है तो आत्मा में लज्जा, भय और शङ्का उत्पन्न होती है इसके विपरीत जब अच्छे काम में प्रवृत्त होता है तो आत्मा में आनन्द, अभय एवं उत्साह की उत्पत्ति होती है। यह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से होती है ये सभी मनुष्यों पर लागू होती है। ये नियम किसने बनाया, कब बनाया और क्यों बनाया? उत्तर है- परमेश्वर ने बनाया, नित्य है जीवों के कल्याण (मुक्ति) के लिए बनाया। इसी प्रकार संसार में न्याय व्यवस्था, सत्याचरण, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का प्रेरक एवं मूल स्रोत परमेश्वर ही है। अच्छे कर्मों में उत्साह आनन्द एवं निर्भयता का होना तथा बुरे कर्मों से लज्जा, भय, शङ्का का होना ये सृष्टि के समस्त मनुष्यों की आत्मा में परमात्मा की ओर से प्रेरणा सदैव होती रहती है। इससे ये भी सिद्ध होता है कि ईश्वर सर्वव्यापक है चेतन और आनन्द का आदि मूल एवं भण्डार है।

अब भाषाओं के मूल पर विचार करते हैं। हम सब जानते हैं कि समस्त संसार की जितनी भाषाएँ है वे सब संस्कृत भाषा से निकली हैं उदाहरणार्थ मातृ से माता तथा अंग्रेजी में मातृ से मातर-मादर-मदर बना। इसी प्रकार पितृ से पिता तथा अंग्रेजी में पितृ-पितर-फिवर-फादर बना। इस प्रकार संसार की समस्त भाषाओं का मूल स्रोत संस्कृत है तथा संस्कृत का मूल स्रोत वेद है वेद की संस्कृत देववाणी कही जाती है ये देववाणी आदि सृष्टि में चार महान् ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के हृदय में परमात्मा के द्वारा ही प्रकाशित हुई थी। आज प्रत्येक बाल को सर्वप्रथमभाषा का ज्ञान उसके माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि के द्वारा प्राप्त होता है और उन्होंने इसी प्रकार सीखा था इसीलिए इसको मातृभाषा कहा जाता है, लेकिन आदि मानव को ये भाषा चार महान् ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के माध्यम से देववाणी के रूप में मिली थी। आदि सृष्टि में ये भाषा इन ऋषियों के हृदय में समाधि के समय परमेश्वर ने सुनाई थी जो उनके मुख से वेद (देववाणी) के रूप में प्रवाहित हुई थी। इस प्रकार भाषा ज्ञान का भी आदि मूल परमेश्वर है। इसी प्रकार यदि महर्षि की बनाई ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका को देखेंगे तो महर्षि ने गणित विद्या, नौविमानादि विद्या, तार विद्या, वैद्यक शास्त्र आदि के मूल विषय वेद में दर्शाया है। अत: उक्त समस्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि ''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।''

आर्यसमाज का ये नियम इस बात को दर्शाता है कि महर्षि दयानन्द कितने बड़े आस्तिक थे और विडम्बना देखिये कि जिसने समस्त सत्य विद्याओं एवं पदार्थ विद्याओं का मूल स्रोत ईश्वर और उसकी वाणी वेद को बताया लोगों ने उसको नास्तिक समझ लिया और आर्यसमाज के नजदीक नहीं आ सके। ऐसे लोगों ने यदि आर्यसमाज का प्रथम नियम ही ध्यान से पढ़ा और समझा होता तो महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज को समझकर लोकोपकार के कार्य में अवश्य जुट जाते। आइए हम सब आर्यसमाज के नियमों के माध्यम से महर्षि दयानन्द को समझने का प्रयास करते हैं।

चन्द्रवरदाई नगर, अजमेर

सावधान!

नटवरलाल 'स्नेही'

माँग रहा क्या कोई मुझसे आज युद्ध की भिक्षा है?
कोई क्षुद्र, रुद्र की धृति की करने चला समीक्षा है।
मार रहा है जो डंकों चोटों को कहीं नगाड़ों पर,
दहक रही-सी लगती मुझको आग देश की बाड़ों पर।
रह-रह कर के रण-आमन्त्रण टकराता है कानों से,
तृप्त हुआ रावण न अभी तक स्यात् राम के बाणों से।
कौन काल से प्रेरित हो, मद अन्ध दीप पर आयेगा?
फिर हिमाद्रि के वक्षस्थल को ज्वालामुखी बनाएगा?
लगता है, रिपु रक्तबीज है, मर-मर कर जी जाता है,
नया जन्म लेकर फिर मेरे हाथों मरने आता है।
सुधा कलश है मेरे कर, पर उसको गरल सुहाता है,
क्षमाशील हूँ किन्तु दर्प को मात्र दण्ड ही भाता है।
जगा चुका जो कोई मेरे पाञ्चजन्य का प्रलयी रव,
उसे देखना ही होगा फिर कुरुक्षेत्र का नव उद्भव,
कोई जब झकझोर रहा, फड़कें न भुजायें क्यों मेरी?
मरना ही है, आ जाये वह काल-कवल, अब क्यों देरी?
जयचन्दों का कुटिल खेल, अब खेलमात्र रह जायेगा,
भोला पृथ्वीराज, कभी अब भूल न दया दिखायेगा।
आए, प्रियजन से मिल आए, फिर न लौट घर जाएगा,
धूल रक्त पी जाएगी सब, शव शृगाल ही खाएगा।

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (स.प्र.स.३)

तान भुजाएँ आर्यवीर!
तू, बलशाली मतवाला बन!

भैरवदत्त शुक्ल

पनप चले क्यों धर्म-लुटेरे? जब न तनिक भी टोटा था;
निर्मल जल बह निकला कैसे? फूटा हुआ न लोटा था;
आस्तीनों के साँप पालकर, मित्र बनाये जो तूने;
उनका ही यह गुप्त घिनौना, काला करतब खोटा था;
छेद फनों के बिना हिचक के, चमकीला-सा भाला बन!
तान भुजाएँ आर्यवीर! तू, बलशाली मतवाला बन!!
तेरे भाई जो अधसोये, उनको तुरत जगाये जा;

दबी-सतायी, पीड़ित जनता को ढाढ़स बँधवाये जा;
जन-'यमुना' के कर्म-सलिल में, भेदभाव का 'कालिम' बैठा;
बुद्धि-'बांसुरी' के सैनों पर, मात उसे दिलवाये जा;
युग का कान्हा, सक्षम योगी, वासुदेव प्रभु आला बन!
तान भुजाएँ आर्यवीर! तू, बलशाली मतवाला बन!!

एकता-'सुता' की तृण-'रोटी', छल-बिल्ली ने खाई रे;
शुक पौरुष 'प्रताप' ने फिर भी, हिचक नहीं दिखलाई रे;
परम्परा की 'हल्दी घाटी' में घिर गया ६० लावों से;
आँख खोलकर, देख आपदा जो सहसा बढ़ आयी रे;
प्राण समर्पित करके अपने, बलिदानी युग 'झाला' बन!
तान भुजाएँ आर्यवीर! तू, बलशाली मतवाला बन!!

'लेखराम' की अलख जगा दे, 'गुरुदत्तों' की फौज सजा;
कोटि 'चमूपति' पनपा पल में, तर्क-नगाड़ा बड़ा बजा;
'रामचन्द्र देहलवी' आज बन जाने की वेला आयी;
राग-तान मनचले 'प्रकाशों' की ना जाये आज लजा;
'श्रद्धानन्द'-सरीखा निर्णय, त्यागी गुरुकुल वाला बन!
तान भुजाएँ आर्यवीर! तू, बलशाली मतवाला बन!!

महर्षि दयानन्द सरस्वती क्या हैं?

दयानन्द नाम है- वेद तथा वैदिक संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा का।

दयानन्द नाम है- राष्ट्र की अस्मिता का, मानवता के संरक्षण एवं संवर्धन का।

दयानन्द नाम है- ऐसी जीवन-पद्धति का जिसके बिना न व्यक्ति का निर्माण हो सकता है न समाज का।

दयानन्द नाम है- उस विराट् अग्नि का, जो भीतर-बाहर के मैल को राख बनाकर व्यक्ति और समाज को कुन्दन बना देती है।

दयानन्द नाम है- उस प्रबल प्रभञ्जन का, जो रूढ़िवादिता, कुरीतियों को जड़मूल से उखाड़ फेंक देता है।

दयानन्द नाम है- उस सम्पूर्ण वैचारिक क्रान्ति का, जो समूचे विश्व को वेद के आधार पर एक नूतन तार्किक-धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आत्मबोध देती है।

दयानन्द नाम है- भारतीय स्वतन्त्रता हेतु प्रथम शंखनाद करने का।

दयानन्द नाम है- गुरुकुल-पद्धति के पुनरुद्धारक का।

दयानन्द नाम है- ऋषि-मुनियों की परम्परा को पुनर्जीवित करने का।

दयानन्द नाम है- आध्यात्मिकता के सत्य को धरातल पर उद्‌घाटित करने वाले अध्यात्म के स्रोत का।

दयानन्द नाम है- उस जागरण का, जो स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वराज्य का एक साथ सन्देश सुनाता है।

दयानन्द नाम है- विधर्मियों के सांस्कृतिक आक्रमण को विफल करने वाले एक योद्धा का।

दयानन्द नाम है- जिसकी दया से अनाथ, दलित, विधवा व गोमाता के करुण-क्रन्दन को त्राण मिला।

संकलनकर्त्ता- स्वामी प्रवासानन्द, ऋषिउद्यान, अजमेर।

[illegible]

पुस्तक का नाम	**वास्तविक मूल्य रुपये**	**छूट के साथ मूल्य रुपये**
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800